

कुशवाहा कान्त

खून का प्यासा

कुशवाहा कान्त



खून का प्यासा

प्रकाशक :
डायमण्ड पॉकेट बुक्स
२७१५ दरियागंज नई दिल्ली-११०००२

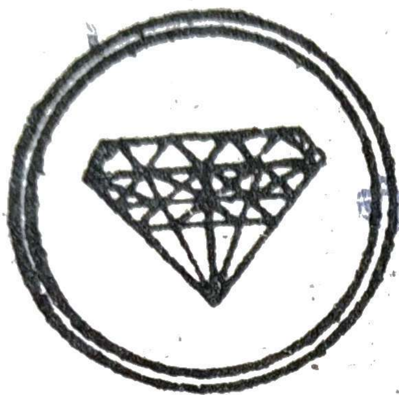
वितरक :
पंजाबी पुस्तक भण्डार
दरीबा कलां दिल्ली-११०००६

प्रथम संस्करण १९७९

मूल्य : [illegible] रुपये

मुद्रक : बेस्ट फोटो आफसैट प्रिन्टर्स, नई दिल्ली.

KHOON KA PYASA : Kushwaha Kant : 6-00



D-349

"...जिस 'खून के प्यासे' को तुम कुरूप बुड्ढा कह रही हो रूपवती, उसके समान सुन्दर और प्रेमवान पुरुष तो इस दुनिया के परदे में कहीं भी नहीं है। यह मनुष्य सौन्दर्य का अनुपम कोष लेकर इस संसार में आया है..."

कुशवाहा कान्त की लेखनी से 'सेक्स' और 'क्राइम' पर आधारित यह उपन्यास जहां आपके रोंगटे खड़े कर देगा वहां आपको यौवन और वासना के ससार में ले जाकर मनोरंजित भी करेगा।

—इसी उपन्यास में से

१

श्रावण मास का महीना है। वर्षा का आगमन हो चुका है ! अर्द्ध-रात्रि की बेला, बीहड़ पहाड़ी स्थान तथा जंगली जानवरों की चिल्लाहट उन दोनों पथिकों की राह में कुछ भी रुकावट नहीं डाल रही है, जो सुन्दर मुश्की घोड़ों पर सवार बातचीत करते हुए चले जा रहे हैं।

वे दोनों सवार चुनार राज्य के महाराज खगबहादुरसिंह के सुपुत्र राजकुमार जंगबहादुरसिंह के अन्तरंग मित्र तथा उन्हीं के ऐयार हैं। जो मनुष्य बाईं ओर से जा रहा है, जिसकी कमर में एक तलवार लटक रही है, जिसकी पोशाक कुछ चमकीली तथा जिस पर जरी का काम किया हुआ है और जिसकी अट्ठाईस वर्ष की अवस्था और शरीर की गठन बहुत सुन्दर मालूम पड़ रही है, वही प्रेतराज है। दूसरा सवार जिसकी अवस्था भी लगभग २५ वर्ष की होगी, रजनीकान्त के नाम से प्रसिद्ध है। दो-तीन दिन हुए 'खून का प्यासा' जो आजकल बहुत ही प्रसिद्ध हो रहा है, कुमार जंगबहादुरसिंह को किसी प्रकार कैद कर उठा ले गया। उन्हीं को खोजने के लिए ये दोनों ऐयार निकले हैं। दोनों के चेहरे नकाब से ढके हुए हैं। ये दोनों अपनी धुन के ऐसे पक्के हैं कि अर्द्धरात्रि हो जाने पर भी कहीं रुकते नहीं और बराबर जंगल-ही-जंगल घोड़ा दौड़ाते हुए चले जा रहे हैं।

चलते-चलते ये लोग बहुत दूर निकल गए। अन्त में थक कर प्रेत-राज अपने घोड़े से उतर पड़ा। उसकी देखा-देखी रजनीकान्त ने भी वैसा ही किया। दोनों ने अपने-अपने घोड़े पेड़ों की डाल से बांध दिए और पास पड़ी हुई एक साथ चट्टान पर बैठकर बातचीत करने लगे—

प्रेतराज— रजनीकान्त ! हम लोग बहुत दूर आ चुके हैं। परन्तु न तो राजकुमार का पता लगा और न 'खून के प्यासे' से ही भेंट हुई। न मालूम कैसे वह दुष्ट ऐयार, जिसने अपने को 'खून के प्यासे' के नाम से घोषित कर रखा है, हमारे प्रिय राजकुमार को उठा ले गया। अब वे न मालूम किस दशा में होंगे।

रजनीकान्त—आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारे रहते हुए भी वह कुमार को उठा ले गया। वे बालक थोड़े ही हैं, अब तो लड़ने-

भिड़ने लायक भी हो गए हैं।

प्रेतराज—आजकल 'खून के प्यासे' का दौर-दौरा है। यह ऐयार न मालूम कैसा है कि हर जगह पहुंच सकता है, तथा जो जी में आए कर सकता है। मैं अपने को ऐयारों का दादा गुरु समझता था, परन्तु वह मुझे भी ठग कर कुमार को उठा ले गया। खैर ! यदि दम में दम रहा तो देखूंगा कि 'खून का प्यासा' अपने में कितनी शक्ति रखता है।

रजनीकान्त—मैं भी चाहता हूं कि 'खून के प्यासे' का सामना करूं। आजकल अपने भयानक कर्मों के कारण वह प्रायः सर्वत्र विख्यात हो गया है। उसका वार बड़े-बड़े राजाओं-महराजाओं के ऊपर हो चुका है परन्तु न मालूम क्यों उसने हम लोगों से अभी तक छेड़-छाड़ न की थी। अब हमारे प्रिय कुमार को ले जाकर उसने हम लोगों से भी बैर बांधा है। हम लोग भी देखेंगे कि वह कितने पानी में है।

प्रेतराज—ठीक कहते हो, मेरा भी यही विचार है कि किसी प्रकार 'खून के प्यासे' का पता लगे, ताकि मैं उसे अपनी शक्ति दिखा सकूं और···।

प्रेतराज कुछ और भी कहना चाहता था कि एक लपलपाता हुआ हाथ भर लम्बा छूरा कहीं से आकर दोनों ऐयारों के सामने ज़मीन में गड़ गया। उसके दस्ते में एक कागज़ बंधा हुआ था। प्रेतराज ने उस कागज़ को छुरे से खोल लिया और पढ़ने लगा—

अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने वाले वीरो !

मुझे तुम लोगों का पता लग गया है। यदि हमारा पीछा किया तो तुम्हारी खैर नहीं ? अपने कुमार से भी हाथ धो बैठोगे। अगर तुम लोग अपने को वीर कहते हो तो जाओ. विजयगढ़ की राजकुमारी चन्द्रप्रभा को बचाओ, जिसको राजकुमार चाहते हैं। हम उसे शीघ्र ही उठा लाने वाले हैं। जाओ और अपनी ऐयारी दिखाओ।

—वही 'खून का प्यासा'

पत्र पढ़ते ही दोनों ऐयारों का बुरा हाल हो गया क्योंकि वे जानते थे कि राजकुमारी चन्द्रप्रभा जो विजयगढ़ के महाराज विजय बहादुर सिंह की सुपुत्री है. यदि किसी प्रकार 'खून के प्यासे' के हाथ पड़ गई, तो वह उसे कभी ज़िन्दा न छोड़ेगा [illegible] दशा में कुमार का जीवित रहना भी कठिन होगा, क्योंकि कुमार उसे हृदय से चाहते हैं। कुछ देर तक तो किसी से कुछ बोलते ही न बना—अन्त में प्रेतराज ने अपने को कहा—रजनीकान्त ! चन्द्रप्रभा को अवश्य बचना चाहिए,

दोनों ऐयार अपना सामान उठाकर घोड़ों पर सवार होने ही जा रहे थे कि एकाएक पीछे से आवाज़ आई—ठहरो !

दोनों ने चकित होकर पीछे की ओर देखा, परन्तु कोई भी दीख न पड़ा। प्रेतराज ने इधर-उधर घूम-फिरकर आवाज़ देने वाले की खोज की परन्तु किसी की सूरत तक दिखाई न पड़ी। अन्त में उसने पुकार कर कहा—अभी-अभी यह कौन बोला है।

एक कड़कती हुई, बादल के गरजने के समान आवाज़ आई—मैं।

प्रेतराज—कौन हो तुम ?

आवाज़—तुम्हारा और चुनार राज्य का सबसे बड़ा शत्रु।

प्रेतराज—कौन ? 'खून का प्यासा' ?

आवाज़—नहीं गुरुघंटाल !

प्रेतराज—आखिर तुम हो कहां ?

आवाज़—तुम्हारे सामने ही तो हूं।

प्रेतराज—लेकिन मैं तो तुम्हें नहीं देख रहा हूं। क्या तुम अपनी सूरत मुझे दिखा सकते हो ? कम-से-कम अपने इस नये शत्रु की सूरत तो देख लूं, जो डर के मारे छिपा हुआ बातें कर रहा है।

आवाज़—क्या तुम लोगों ने मुझे निर्बल समझ रखा है ? मैं ऐयारों का 'गुरुघंटाल' हूं।

एक धड़ाके की आवाज़ हुई जिससे दोनों ऐयार गिरते-गिरते बचे और उनके सामने—दस फुट ऊंचा एक भीमकाय बनमानुष खड़ा हुआ दिखाई दिया। इस भयंकर जीव को देखकर दोनों एयार भय से थर-थर कांपने लगे। उनको इस प्रकार भयभीत देखकर उस भयंकर बन-मानुष ने एक विकट अट्टहास किया जिसमे दिशाएं गूंज उठीं और फिर उसने अपनी भयानक आवाज़ में कहा—क्यों 'गुरुघंटाल' की केवल सूरत ही देखकर तुम लोगों का यह हाल है तो उसका सामना किस प्रकार करोगे ?

धीरे-धीरे वह भीमकाय बनमानुष, वह भयंकर 'गुरुघंटाल' दोनों ऐयारों की ओर बढ़ने लगा। उसे अपनी ओर आता देखकर दोनों ऐयार चीख मारकर बेहोश हो गए। उनके पास आकर वह नरपिशाच फिर एक बार विकट रूप से हंसा और फिर अदृश्य हो गया।

जब प्रेतराज और रजनीकान्त की बेहोशी दूर हुई तब पहर दिन चढ़ चुका था। प्रेतराज ने दुखित स्वर में कहा—रजनीकान्त ! अब हमारा विजयगढ़ चलना व्यर्थ है। चन्द्रप्रभा को हम लोग नहीं पा

रजनीकान्त—क्यों ?

प्रेतराज—क्योंकि 'खून के प्यासे' को केवल एक मिनट का अव-सर बहुत है। हम लोग तो छह घंटे तक बेहोश रहे। इस बीच तो वह अपना काम कर चुका होगा।

रजनीकान्त—परन्तु वहां चलकर पता तो अवश्य ही लगाना चाहिए।

प्रेतराज—अच्छा तो फिर चलो।

परन्तु एकाएक कहीं से एक तीव्र आवाज़ आई—अब जाने से क्या होगा ?—और दोनों एयारों ने पास ही एक झाड़ी से एक भया-नक मनुष्य को निकलते देखा, जो इन्हीं की ओर आ रहा था। वह आकर इन दोनों के सामने खड़ा हो गया। उसे देखते ही दोनों ऐयार फिर थर-थर कांपने लगे।

इन दोनों ऐयारों को भयभीत देखकर वह मनुष्य भयानक हंसी के साथ बोला—डरो नहीं ! मैं तुम्हारा शत्रु नहीं वन मित्र हूं। मुझसे डरने की आवश्यकता नहीं। उठो ! और मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो।

उसकी सांत्वनापूर्ण बातों से दोनों का भय कुछ कम हुआ तो प्रेतराज ने पूछा—सबसे पहले मैं अपने इस विचित्र सहायक का परि-चय जानना चाहता हूं।

भयानक मनुष्य—तुम मेरा पूर्ण परिचय अभी नहीं जान सकते, हां ! इतना बता देने में कोई हानि नहीं कि मेरा आजकल का नाम 'जंगली' है।

प्रेतराज—अभी-अभी आपने उस झाड़ी में से निकलते हुए, जो कहा था कि 'अब जाने से क्या होगा ?' उसका क्या मतलब है ?

जंगली—मतलब तो साफ ही है कि तुम्हारा विजयगढ़ जाने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि कुमारी चन्द्रप्रभा 'खून के प्यासे' के हाथ पड़ चुकी है।

प्रेतराज—क्या कहा !

जंगली—उसे 'खून के प्यासे' ने कैद कर लिया। अगर शीघ्र ही उस दुष्ट की टांगें न तोड़ दी गईं, तो वह उसकी जान ही लेकर छोड़ेगा।

प्रेतराज—तब इसका क्या उपाय हो सकता है ?

जंगली—उपाय तो बहुत से हैं। अभी मैं विजयगढ़ से ही चला आ रहा हूं। मैंने 'खून के प्यासे' को स्वयं अपनी आंखों से राजकुमारी

चन्द्रप्रभा को ले जाते हुए देखा है। क्रोध में आकर मैंने उसके शागिर्दों को मार भी डाला !

प्रेतराज—जब आपने 'खून के प्यासे' को राजकुमारी को ले जाते हुए देखा, तो उसे रोका क्यों नहीं !

जंगली—तुम नहीं जानते प्रेतराज कि 'खून का प्यासा' कितना जबरदस्त शत्रु है। उस पर हम तभी विजय प्राप्त कर सकते हैं जब हम 'प्रेतात्मा' की शरण जाएं !

'प्रेतराज—प्रेतात्मा कौन ?

जंगली—प्रेतात्मा हमारा गुरुभाई है। 'खून का प्यासा' उससे बहुत डरता है !

'खून का प्यासा', मैं तथा प्रेतात्मा गुरुभाई हैं। हम सब गुरुवर गुप्तनाथ के शिष्य हैं।

प्रेतराज—कौन गुरुवर गुप्तनाथ ? जिनके विषय में लोग कहते हैं कि उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई।

जंगली—हां वही। 'खून के प्यासे' का पालन-पोषण उसकी बाल्यावस्था से ही गुरुवर ने किया था, इसलिए वे उसे बहुत प्यार करते थे। हम लोगों से भी अधिक। यों तो उन्होंने हम तीनों को ऐयारी विद्या में निपुण बना दिया, परन्तु इसके अतिरिक्त 'खून के प्यासे' को उन्होंने कई अमूल्य वस्तुएं दीं। उन्होंने उसे पन्द्रह छुरों की एक पेटी दी, जिसे वह सदैव अपनी कमर से बांधे रहता है। उन छुरों में विद्युत शक्ति है, जिसके छूते ही मनुष्य चेतनाहीन हो जाता है। उन्होंने उसे कई प्रकार के विचित्र यन्त्र भी दिए, जिसके कारण वह आजकल अजेय हो रहा है। उसके पास गुरुवर का दिया दो हाथ लम्बा एक छुरा भी है, उसकी मार से मनुष्य बच नहीं सकता ? उसका वार कभी भी खाली नहीं जाता। एक दिन प्रेतात्मा और 'खून के प्यासे' में कुछ खटपट हो गई। 'खून के प्यासे' ने गुरुवर का दिया हुआ वह दो हाथ वाला छुरा, जो कभी भी निष्फल नहीं जाता, प्रेतात्मा की ओर चलाया। उसके चलाते ही एक तीव्र ज्योति छिटकी और वह छुरा जाकर प्रेतात्मा के कलेजे में घुस गया। प्रेतात्मा वहीं 'हाय' करके मिट्टी का ढेर हो गया। यह समाचार जब गुरुवर को मिला तो वे 'खून के प्यासे' पर बहुत ही रुष्ट हुए। उन्होंने अपनी योगविद्या द्वारा प्रेतात्मा को जिलाया और 'खून के प्यासे' से कहा अब कभी प्रेतात्मा पर वार न करना, नहीं तो तुम्हें ही पराजित होना पड़ेगा। तभी से 'खून का प्यासा' प्रेतात्मा से बहुत डरता है।...पहले तो 'खून का प्यासा' बहुत ही दयावान तथा सदा-

बीच में कई घटनाएं ऐसी हो गईं कि उसको मानव-समाज से घोर घृणा हो गई और उसने उसका नाश करने के लिए शपथ खा ली। तभी से उसने अपना नाम 'खून का प्यासा' रखा और इसके अनन्तर न मालूम कितने राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

प्रेतराज—वह आपको इस समय देखकर पहचान सकता है या नहीं।

जंगली—नहीं। वह मुझे इस बनावटी रूप में देखकर नहीं पहचान सकता।···वस्तुतः 'खून का प्यासा' बहुत वीर है और यदि उसकी वह वीरता भले कार्यों में लग जाए, तो जनसमाज का बड़ा ही उपकार हो। मैं उसे सुधारने का यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा और जहां तक मुझसे हो सकेगा तुम लोगों की सहायता करूंगा।

प्रेतराज—अच्छा! तो मुझे अब आप क्या करने की आज्ञा दे रहे हैं?

जंगली—देखो! वह सामने कुआं दिखाई पड़ रहा है, उसी पर परसों प्रातःकाल मेरी प्रतीक्षा करना। मेरा निवास-स्थान वही कुआं है।

प्रेतराज—क्या आप उस कुएं में रहते हैं?

जंगली—हां!

प्रेतराज—परन्तु उसमें तो अथाह पानी है।

जंगली—घबड़ाओ नहीं! परसों सब जान जाओगे।

२

दस बजे दिन का समय है। ग्रीष्म ऋतु का सूर्य प्रखर ज्वालाएं उगलने लग गया है, जीव-जन्तु सभी तृष्णा से व्याकुल होकर इधर-मारे मारे फिर रहे हैं। धरती पर पैर नहीं रखे जाते। फिर भी वह वीरवेशा युवती लेशमात्र भी थकित नहीं दिखाई पड़ती और सरपट भगाए चली जा रही है। घोड़ा पसीने से तर है और थका हुआ-मालूम पड़ रहा है, मानो बहुत ही बड़ी यात्रा करके आ रहा हो। वन तथा ऊबड़-खाबड़ होने के कारण घोड़ा तेजी से नहीं चल रहा है।

एक पहाड़ी शिला के निकट पहुंचकर उस युवती ने अपना घोड़ा और उसी शिला पर लेटकर विश्राम करने लगी। मन्द-मन्द वायु ही गहरी नींद सो गई।

एकाएक कुछ खटके की आवाज हुई। युवती हड़बड़ाकर उठ बैठी और अपने चारों ओर देखने लगी। उसने कुछ दूर पर एक नकाब-पोश को देखा, जो उसी ओर तेजी से बढ़ा आ रहा था।

अभी वह संभलने भी न पाई थी कि वह नकाबपोश उसके पास आ पहुंचा और उसे अपनी लाल-लाल भयंकर आंखों से घूरने लगा।

आते ही उसने युवती से कड़ककर पूछा—क्यों री! तू तो रूप-नगर की महारानी रूपवती की ऐयार चम्पा है न?

युवती—मैं कोई होऊं तुम्हें इससे क्या?

नकाबपोश—सच है। तू मुझे नहीं पहचानती इसलिए ऐसा कह रही है। याद रख, इस समय 'खून का प्यासा' तेरे सामने खड़ा है। बिना ठीक उत्तर दिए खैर नहीं। तेरी महारानी ने जान-बूझकर मुझसे शत्रुता की है। चुनार के राजकुमार जंगबहादुरसिंह को स्वयं कैद करके अपने यहां रखा है और यह झूठी खबर उड़ा दी कि 'खून का प्यासा' उठा ले गया। क्या तू जानती है कि इस झूठी खबर को सुन-कर मुझे कितना क्रोध आया। मैं उसी समय रूपगढ़ी गया और रूप-गढ़ी के क़िले से, जिस पर तुम लोगों को इतना गर्व है, राजकुमार को उठा लाया। तू उसका पता लगाने निकली है न?

युवती—तुम्हें इससे मतलब?

'खून का प्यासा'—चम्पा! याद रख तू 'खून के प्यासे' के हाथों से जंगबहादुर को कदापि नहीं छुड़ा सकती! यदि प्रयत्न करेगी तो अपनी जान से भी हाथ धोएगी। जा, आज मैं तुझे इसलिए छोड़ दे रहा हूं कि तू जाकर अपनी महारानी से कहे कि मैं उसे प्यार करता हूं। यदि मेरी यह इच्छा उसने पूर्ण न की तो सारा रूपनगर राख कर दूंगा।

चम्पा—(क्रोध से) पहले मुझे तो राख कर ले, दुष्ट! तू मेरे हाथों से अब बचकर कहां जा सकता है।

कहकरे चम्पा ने अपना खंजर निकाल लिया। 'खून के प्यासे' की भृकुटी चढ़ गई। उसने अपनी तलवार खींच ली।

इतने ही में एक कड़कती हुई आवाज़ आई—खबरदार! इस स्त्री पर हाथ न उठाना।

इस आवाज़ को सुनकर 'खून का प्यासा' ठिठक गया और चारों ओर देखने लगा। सामने से ही एक विचित्र घुड़सवार आता हुआ दिखाई दिया। यह 'जंगली' था।

कहलाती।

'खून का प्यासा'—मैं सदैव से ही 'खून का प्यासा' हूं चाहे यह खून स्त्री का हो या पुरुष का।

'जंगली'—सच है रे नराधम ! सच है। अच्छा ! अब तू मरने लिए तैयार हो जा क्योंकि शीघ्र ही यह मेरी दुधारी तेरे कलेजे के पार हो जाएगी। तू मेरा परिचय जानना चाहता है न ! देख ! तेरे दोनों प्रिय शागिर्दों रामू, श्यामू को मारने वाला 'जंगली' तेरे सामने खड़ा हुआ है।

'खून का प्यासा'—और, क्या तू ही मेरे प्राणों से प्यारे शागिर्दों का घातक है? ठहर जा, दुष्ट ! इसका मजा तुझे अभी चखाता हूं।

कहकर 'खून के प्यासे' ने 'जंगली' पर अपनी तलवार का वार किया। 'जंगली' भी तलवार निकालकर उसका सामना करने लगा। खचाखच तलवारें बजने लगीं।

परन्तु 'जंगली' को शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह तलवार की लड़ाई में 'खून के प्यासे' के सामने अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। अतएव वह भागने का विचार करने लगा वह लड़ता हुआ उधर निकल गया जिधर उसका घोड़ा था और लपककर उस पर चढ़ बैठा। ऐड़ लगाते ही घोड़ा द्रुतगति से भाग चला।

अपने शिकार को इस प्रकार हाथ से निकलकर जाते हुए देख 'खून के प्यासे' ने अपनी कमर वाली पेटी से एक छुरा निकाला और उसे तानकर 'जंगली' के घोड़े पर चलाया। छुरा भर्राता हुआ जाकर घोड़े की पिछली टांग में लगा। घोड़ा एक बार थर्राया और फिर निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा।

'जंगली' ने जब देखा कि उसका घोड़ा मर गया तो वह पैदल ही भागने लगा। परन्तु उसी समय 'खून के प्यासे' का चलाया हुआ एक दूसरा छुरा आकर 'जंगली' के पीठ में घुस गया। छुरा लगते ही उसके शरीर में एक प्रकार की झनझनाहट पैदा हुई और वह भी गिर-कर बेहोश हो गया।

अपने शिकार को गिरते हुए देखकर 'खून के प्यासे' के मुख से एक प्रसन्नता की आवाज निकल पड़ी। वह खुशी-खुशी 'जंगली' की ओर झपटा, जो वहां से दो-तीन सौ गज की दूरी पर बेहोश पड़ा हुआ था अभी उसने आधा मार्ग भी तय नहीं किया था कि पास ही झाड़ी से एक मनुष्य निकला और बेहोश 'जंगली' को उठाकर उस झाड़ी की ओर भागा, परन्तु वह भी 'खून के प्यासे' के छुरे से न बच सका।

क्योंकि उसी समय उसका चलाया हुआ एक और छुरा आकर उस मनुष्य को लगा और वह वहीं कांप कर गिर पड़ा।

तब तक 'खून का प्यासा' भी उन तक पहुंच गया। उसने इन दोनों को एक ही गठरी में बांधा और पीठ पर रखकर चलता बना।

'खून के प्यासे' से चम्पा का कभी सामना नहीं हुआ था। आज के पहले वह सोचे हुए थी कि यदि 'खून के प्यासे' से कभी सामना हो जाएगा तो वह अपनी वीरता दिखाकर उसके छक्के छुड़ा देगी। परन्तु आज की लड़ाई को देखकर वह समझ गई कि 'खून का प्यासा' कोई मामूली नहीं।

o o o

अर्द्धरात्रि का समय है। शरद्‌चन्द्र अपनी पूर्ण कलाओं सहित प्रकाशमय हो उठा है। आइए उस सामने वाले कमरे में चलें। कमरा क्या ही जगमगा रहा है। साज-सजावट भी कम नहीं, कमरे में बीचों-बीच एक संगमरमर की चौकी रखी हुई है जिस पर मिर्जापुरी कालीन बिछा हुआ है तथा तकिये के सहारे उसपर एक सुन्दर युवती बैठी हुई है। यही रूपनगर की महारानी रूपवती हैं जो उनसे हंस-हंसकर बातें कर रही हैं इसकी मुंह बोली सखी चन्द्रकला है।

चन्द्रकला—महारानी जी! आपने व्यर्थ ही 'खून के प्यासे' से बैर बांधा। आपने चुनार राज्य के युवराज कुमार जंगबहादुरसिंह को पकड़वा मंगाया और शोर कर दिया कि 'खून का प्यासा' उन्हें उठा ले गया। वह सोचेगा कि सारा संसार यही जानता है कि जंगबहादुर उठा ले जाने वाला वही है तो क्यों न उन्हें अपने पास रखे? जहां तक मैं समझती हूं आपकी दुर्गम गढ़ी से जंगबहादुर को ले जाने वाला 'खून का प्यासा' ही है।

रूपवती—तुम्हारा सोचना ठीक हो सकता है।

चन्द्रकला—महारानी जी! अब आप यह कुमार्ग छोड़ दें। आप नित्य नये-नये राजकुमारों को पकड़कर उन्हें दुर्गम रूपगढ़ी में कैद कर देती हैं। न मालूम कितने राजकुमारों को आपने अपने तिलिस्म में बन्द कर रखा है।

रूपवती—चन्द्रकला! मैं तुझे सबसे बढ़कर प्यार करती हूं, तू मेरे हर भेद को जानती है—फिर आज तू इस प्रकार की बातें क्यों कर रही है?

चन्द्रकला—महारानी जी! मैं तो केवल उन राजकुमारों को छोड़ देने के लिए प्रार्थना कर रही हूं, क्योंकि उनके माता-पिता उनके लिए

दूंगी, तो मेरा सारा भेद प्रकट हो जाएगा।

इन दोनों में बातें हो रही थीं कि एक दासी ने उस कमरे में प्रवेश किया। रूपवती ने उससे इशारे से पूछा—क्या है?

दासी—चम्पा जी बाहर खड़ी हुई हैं और आपसे इसी समय मिलना चाहती हैं।

रूपवती—उसे शीघ्र भेजो।

दासी चली गई और थोड़ी देर के बाद चम्पा ने कमरे में प्रवेश किया। उसे देखते ही रूपवती दौड़कर उसके गले से लिपट गई।

रूपवती—चम्पा! बता क्या खबर लाई है? क्या जंगबहादुर का पता लगा?

चम्पा—पता तो लग गया है, परन्तु उनका छूटना बड़ा ही कठिन है। वे बड़े ही जबर्दस्त शत्रु के पंजे में पड़ गए हैं। शायद आपने 'खून के प्यासे' का नाम सुना होगा, वही आपकी गढ़ी से कुमार को उठा ले गया है। वह बड़ा ही जबरदस्त लड़ाका है। आपने उससे शत्रुता करके अच्छा नहीं किया।

रूपवती—चम्पा! तूने मुझे निरी अबला ही जाना है क्या? तुझे मेरी अतुलित शक्ति का पता नहीं है। तभी तू ऐसा कह रही है। याद रख एक नहीं सैकड़ों 'खून के प्यासे' मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

चम्पा कुछ कहने ही जा रही थी कि एक कड़कती हुई आवाज आई, 'झूठ, बिल्कुल झूठ,' और एक लपलपाता हुआ छुरा आकर रूपवती के सामने भूमि में पड़ गया। उसके दस्ते में एक पुरजा बंधा हुआ था। उसे चम्पा ने खोल लिया और जोर-जोर से पढ़ने लगी—

रूप की रानी रूपवती,

मैं तुम्हारी इस दुर्गम गढ़ी में आकर तुम्हें मिट्टी में मिला सकता हूं अतः मुझसे बैर करना छोड़ दो और मेरी बन जाओ... न मानने पर तुम मुझसे नहीं बच सकतीं।

यदि तुम कल तक मेरी बात न मानोगी तो परसों तुम्हारी प्यारी सखी चन्द्रकला का सिर रूपनगर राजमहल के फाटक पर टंगा हुआ दिखाई पड़ेगा।

'खून का प्यासा'

इस पत्र को सुनकर और तो नहीं परन्तु चन्द्रकला बहुत ही क्रोधित हुई। वह खूंटी पर से नंगी तलवार उतार कर यह कहती हुई कि देखें

कदम ही आगे बढ़ी थी कि एक लपलपाता हुआ छुरा आकर उसके पैर में लगा। छुरा लगते ही एक बार वह कांपी और फिर बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। जब-तक कि रूपवती तथा चम्पा उसकी सहायता को पहुंची, तब तक पास ही की एक कोठरी से एक नकाबपोश निकला और चन्द्रकला को उठाकर फिर तेजी से उस कोठरी में घुस गया।

रूपवती आदि ने उसे बहुत खोजा परन्तु उसका पता न लगा। हां··· उन्हें उसी कोठरी में एक पुरजा अवश्य मिला—

'चन्द्रकला को ले जाता हूं, मेरी बात मान लेने ही में तुम्हारा कल्याण है, नहीं तो परसों चन्द्रकला का कटा हुआ सिर देखोगी।

—'खून का प्यासा'

चम्पा ने कहा—देखा न आपने ! मैंने कहा था न कि 'खून का प्यासा' बड़ा ही जबरदस्त है। वह बड़े-बड़े किलों में अकेले ही घुसकर काम कर जाता है और मजाल नहीं कि कोई उस पर हाथ रख सके।

रूपवती सचमुच वह बड़ा ही फुर्तीला है।

चम्पा—वह न मालूम कितने राज्यों को तहस-नहस कर चुका है। आपके राज्य की तो मिसाल ही क्या ?···हां मैं एक बात आपसे पूछना चाहती हूं—वह यह कि आप मुझसे कितने ही राजकुमारों को पकड़वा मंगवाती हैं—परन्तु वे फिर छूटकर अपने राज्य में नहीं पहुंचते। क्या आपने उन्हें कहीं कैद कर रखा है ?

रूपवती—चम्पा तू मेरा जितना भेद जानती है, उतने ही से संतोष कर।

चम्पा—बहुत अच्छा ! परन्तु यह तो बताइए कि 'खून के प्यासे' के प्रेम को आप स्वीकार करेंगी या नहीं ?

रूपवती—अरे ! उस खूंख्वार जानवर से प्रेम ! क्या तू यह समझती है कि मैं उसकी इन धमकियों में आकर उससे प्रेम करने लगूंगी।

३

आज सोनपुर राज्य के महाराज चन्द्रदीपसिंह का 'दरबारे-आम' बहुत ही ठाठ-बाट से लगा हुआ है। सभासद यथायोग्य स्थान पर बैठे हुए हैं। चारों ओर घोर निस्तब्धता छाई हुई है, केवल प्रधानमंत्री अपने हाथ में एक लम्बा-सा कागज लिए हुए यह वक्तृता दे रहे हैं—

"भाइयो ! 'खून का प्यासा' आजकल जन-समाज को कितनी हानि पहुंचा रहा है, यह आप पर अविदित नहीं है ! आराम की नींद सोना हराम हो रहा है। आप लोग जानते ही होंगे कि कुछ दिन पहले हमारे दयालु महाराज ने 'खून के प्यासे' का दमन करने का विचार किया था और इस कार्य के लिए समुचित पारितोषिक की घोषणा भी की थी। महाराज ने उस कार्य को परोपकार की दृष्टिसे अपने हाथोंमें ले लिया था, परन्तु अब उन्हीं पर बल्कि समग्र सोनपुर राज्य पर संकट आना चाहता है, जैसा कि आपको इस कागज की लिखावट से पता चलेगा।"

इतना कहकर मन्त्री जी रुक गए और फिर उस कागज को पढ़कर सभासदों को सुनाने लगे :

"महाराज चन्द्रदीपसिंह !

मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि आप मुझे पकड़वाकर संसार में यश कमाना चाहते हैं, परन्तु याद रखिये आप मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकते। मुझसे बैर बांधना अच्छा नहीं। मैं आपको चेतावनी दे रहा हूं कि मुझे पकड़वाने का विचार छोड़ दीजिए अन्यथा परसों रात आपका सारा खजाना लुट जाएगा।

—'खून का प्यासा'

इतना पढ़कर मन्त्री जी बोले—

"वीरो तथा ऐयारो ! आप लोगों को अपनी वीरता तथा ऐयारी दिखाने का यह सबसे अच्छा समय है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि हमारे शेर दिल ऐयारों में से कोई न कोई अवश्य ही 'खून के प्यासे' का दमन करने के लिए बीड़ा उठाएगा।

मन्त्रीजी की यह वक्तृता सुनकर दरबार में सन्नाटा छा गया। किसी को भी 'खून के प्यासे' के विरुद्ध अपना सिर उठाने का साहस न हुआ।

थोड़ी देर के बाद सोनपुर राज्य के सुप्रसिद्ध ऐयार दीपचन्द ने कहा—मन्त्रीजी! मैं चाहता हूं कि वह स्वर्ण अवसर मुझे ही दिया जाए। मैं अपने राज्य के रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति करने को तैयार हूं।

० ० ०

'खून का प्यासा'—महाराज, चन्द्रदीपसिंह ने मेरी बात नहीं मानी और दीपचन्द को मेरे पीछे रवाना कर ही दिया लेकिन जब से मैंने उसको मारा है, मेरा मन इतना दुर्बल क्यों हो रहा है। और मेरी वह बाईं आंख क्यों…।

खून—१

एकाएक वह चौंक पड़ा। किसी ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखा। उसने पीछे मुड़कर देखा तो एक सफेदपोश पर उसकी दृष्टि पड़ी जो सिर से पैर तक सफेद ही पोशाक पहने हुए था। ऐसे गुप्त स्थान में एक अपरिचित सफेदपोश को देखकर 'खून का प्यासा' आश्चर्यचकित हो गया और उससे पूछा—तुम कौन हो ?

उस सफेदपोश ने इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया वरन् वह जोरों से हंस पड़ा। मालूम होता था कि सफेदपोश को 'खून के प्यासे' ने उसकी आवाज से ही पहचान लिया, क्योंकि ज्योंही वह जोरों से हंसा 'खून का प्यासा' यह कहता हुआ गले से लिपट गया कि मैं अपने प्रिय गुरुभाई प्रेतात्मा की बोली सुन रहा हूं।

सफेदपोश ने उत्तर दिया—हां दुर्जय ! मैं एक विशेष कार्य से...

परन्तु 'खून के प्यासे' ने उसे बीच ही में रोक दिया और कहा—प्रेतात्मा ! मुझे उस पुराने नाम से न सम्बोधित करो। अब मेरा नाम 'खून का प्यासा' है।

प्रेतात्मा—बाल्यावस्था से ही जिस नाम को पुकारने की आदत पड़ गई हो वह अब नहीं छूट सकती दुर्जय ! इतने दिनों के बाद तुम्हें देखकर वह पुराना प्रेम फिर उमड़ आया है।

खून का प्यासा'—आज तुम्हें किस प्रकार मेरी सुध आई प्रेतात्मा ? तुम तो इधर पांच-छह वर्षों से दिखाई ही नहीं पड़ते थे।

प्रेतात्मा—दुर्जय ! आज मैं एक विशेष कार्य से तुम्हारे पास आया हूं। उसे सुनो और उसके अनुसार कार्य करो। नहीं तो मुझे विवश होकर तुम्हारे साथ जबरदस्ती करनी पड़ेगी।

'खून का प्यासा'—वह कौन-सा कार्य है ?

प्रेतात्मा—दुर्जय ! तुम बाल्यावस्था से वीर हो परन्तु तुम्हारी वीरता दिन पर दिन नीच कर्मों में प्रवृत्त होती जा रही है।

इतना सुनते ही 'खून के प्यासे' की भृकुटी चढ़ गई। उसकी खूनी आंखें चमक उठीं उसने सरोष उत्तर दिया—मुझे मानव-समाज से घृणा हो गई है प्रेतात्मा ! मैंने उसका नाश करने के लिए बीड़ा उठाया है।

प्रेतात्मा—परन्तु मेरे जीवित रहने तक तुम ऐसा कदापि नहीं कर सकते। मैं तुमसे कहे दे रहा हूं कि बुरे कर्मों का परिणाम सदैव बुरा ही होना है। तुमने आज उस निरपराध दीपचन्द की हत्या कर महान् पाप किया है।...तुम सोनपुर राज्य का खजाना लूटना चाहते हो, परन्तु तुम्हें अपना यह विचार छोड़ना पड़ेगा। तुम नहीं जानते कि उस खजाने से कितने निर्धनों का परिपालन हो रहा है ?

'खून का प्यासा'—मैं अपने विचारों में परिवर्तन नहीं कर सकता।

प्रेतात्मा—तुम्हें ऐसा करना ही होगा दुर्जय ! स्मरण रहे कि इस संसार में तुम पर विजय पाने वाला यदि कोई है तो मैं ही हूं।

'खून का प्यासा'—प्रेतात्मा ! आज तक मैंने जिस बात की अभिलाषा की है, उसे पूरी ही करके छोड़ा।

प्रेतात्मा—परन्तु अब से तुम्हें अपनी इस अनिष्टकारी अभिलाषाओं का दमन करना पड़ेगा।

'खून का प्यासा'—क्यों ?

प्रेतात्मा—क्योंकि तुम्हारी इन इच्छापूर्तियों से संसार थर्रा गया है। यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो तुम्हें अभी इसी समय कैद करके ले चलूंगा और महाराज चन्द्रदीपसिंह के हवाले कर दूंगा।

'खून का प्यासा'—प्रेतात्मा ! मैं तुम्हारे देखते-देखते सोनपुर को भस्म कर दूंगा।

प्रेतात्मा—तो मुझे विवश होकर तुम्हें कैद करना पड़ेगा।

'कभी नहीं' कहकर 'खून के प्यासे' ने तलवार खींच ली और प्रतात्मा पर वार करना चाहा परन्तु प्रेतात्मा पहले से ही सावधान था। अतः वह उसका वार बचा गया और अपनी झोली में से एक छोटी-सी कागज की बनी हुई गेंद निकालकर 'खून के प्यासे' की नाक पर जोर से फेंकी। वह गेंद उसकी नाक पर लगी और एक हल्की आवाज के साथ फूट गई।

उसमें से निकले हुए धूल सदृश कणों से उसका सारा मुंह भर गया। धूल के कुछ कण उसके श्वास के साथ भीतर भी चले गए जिससे वह शीघ्र ही चेतना-हीन होकर भूमि पर लेट गया।

प्रेतात्मा ने उसे एक गठरी में बांधकर पीठ पर रख लिया और शीघ्रतापूर्वक सोनपुर की ओर प्रस्थान किया।

४

आज विजयगढ़ के महाराज विजयबहादुरसिंह के राजमहल के चारों ओर सख्त पहरा है। नंगी तलवारें लिए हुए प्रहरी इधर-उधर टहल रहे हैं। अर्द्ध रात्रि का समय है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। कृष्णपक्ष की भयावनी काली रात्रि अपना साम्राज्य फैलाए हुए है। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है। पानी की नन्हीं-नन्हीं बूंदें रात्रि की भयंकरता को बढ़ाने में सहायता दे रही हैं।

ऐसी विकट परिस्थिति में हम तीन नकाबपोशों को विजयगढ़ राजमहल के प्रमुख द्वार की ओर बढ़ते देखते हैं। पहले नकाबपोश को तो पाठक सरलतापूर्वक पहचान गए होंगे क्योंकि यह 'खून का प्यासा' है, दूसरे और तीसरे नकाबपोश उसके प्रिय शिष्य रामू और श्यामू हैं।

राजमहल के प्रमुख द्वार के दक्षिण की ओर, पचास गज की दूरी पर एक निकुंज बना हुआ था। 'खून का प्यासा' और उसके शागिर्द जाकर इसी निकुंज में छिप गए।

'खून के प्यासे' ने अपने एक शागिर्द की ओर देखकर कहा—रामू ! मैं प्रमुख द्वार के प्रहरियों को बेहोश कर रहा हूं। तुम सावधानी से रहो, अन्यथा बना-बनाया कार्य बिगड़ जाएगा।

इतना कहकर उसने अपनी पेटी में से एक छुरा निकाला और उसे तानकर प्रमुख द्वार पर पहरा देने वाले प्रहरियों में से एक प्रहरी की ओर चलाया। छुरा भर्राता हुआ जाकर उसकी पीठ में लगा और वह वहीं कांपकर बेहोश हो गया। अपने साथी की यह दशा देखकर दूसरा प्रहरी जो बहुत ही चतुर एवं अनुभवी था तुरन्त समझ गया कि 'खून का प्यासा' यहां आ पहुंचा है। अतएव वह जोरों से चिल्लाने लगा—"अरे ! दौड़ो-दौड़ो ! 'खून का प्यासा' आ पहुंचा।" परन्तु दूसरे ही क्षण 'खून के प्यासे' का चलाया हुआ एक दूसरा छुरा आकर उसे भी लगा और वह भी वहीं कांपकर बेहोश हो गया।

खून का प्यासा—जब तक मैं न लौटूं तब तक तुम दोनों यहीं रहना।

इतना कहकर 'खून का प्यासा' छिपता हुआ राजमहल की ओर रवाना हुआ। रामू और श्यामू चुपचाप उसी निकुंज में बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद एक महाभयानक मनुष्य ने उस निकुंज में प्रवेश किया। उस मनुष्य के सब अंग तो मनुष्य ही की तरह थे, परन्तु उसका मुख शेर के आकार का था, जिससे वह बहुत ही भयानक लगता था। उसके हाथ में एक नंगी तलवार थी।

वह मनुष्य रामू और श्यामू के आगे आकर खड़ा हो गया और बोला—तुम लोग तो उस दुष्ट 'खून के प्यासे' के शागिर्द हो न ?

रामू—तुम कौन हो जी ! जो मेरे गुरुजी को इस प्रकार अपशब्द कह रहे हो।

मनुष्य—मेरा नाम 'जंगली' है। तुम नहीं जानते कि तुम्हारा गुरु कितना दुष्ट तथा हत्यारा है।

रामू—जबान सम्हाल करके बातें करो नहीं तो···

'जंगली'—छोटा मुंह बड़ी बात ! क्या तू समझता है कि तेरे गुरु के समान कोई वीर ही नहीं है। याद रख ! अब शीघ्र ही 'जंगली' तेरे गुरु का दर्प चूर-चूर करेगा।

रामू—मालूम होता है कि तुम्हारा काल आ पहुंचा है। अच्छा ! अब तुम लड़ने के लिए तैयार हो जाओ।

'जंगली'—(क्रोध से) आ ! आ !! जंगली से लड़ने का मज़ा अभी तुझे मिल जाएगा।

कहकर 'जंगली' ने तलवार खींच ली। रामू और श्यामू ने एक साथ ही उस पर वार करना आरम्भ कर दिया। तलवारें चलने लगीं। लड़ते लड़ते 'जंगली' की तलवार श्यामू की गर्दन पर भरपूर बैठी और उसका सिर छटक कर दूर जा गिरा। अपने साथी की यह दशा देखकर रामू के क्रोध का पारावार न रहा, परन्तु वह कर ही क्या सकता था। वह तो बहुत ही छल-बल से 'जंगली' का सामना कर रहा था, परन्तु अन्त में 'जंगली' के वार ने उसका भी काम तमाम कर डाला।

'खून के प्यासे' के दोनों शागिर्दों की यह दशा देखकर 'जंगली' ने कहकहा लगाया। उसने एक कागज़ पर झटपट कुछ लिखा और उस कागज़ को वहीं रखकर नौ दो ग्यारह हो गया।

थोड़ी देर के बाद 'खून का प्यासा' भी एक गठरी लिए वहां आ पहुंचा और अपने प्यारे शागिर्दों की लाश देखकर आश्चर्य करने लगा। एकाएक उसकी दृष्टि 'जंगली' के रखे हुए पुरजे पर पड़ी। उसने उसे उठा लिया और पढ़ने लगा—

"बुरे कर्मों का सदैव बुरा ही परिणाम होता है। अपने शागिर्दों की दशा देख ! एक दिन तेरी भी यही दशा होगी।"

'जंगली'

'खून का प्यासा' सोचने लगा यह 'जंगली' कौन हो सकता है ? यह तो मेरा नया शत्रु उत्पन्न हुआ मालूम होता है। अच्छा इसे भी देखूंगा।

'खून का प्यासा' अभी इस प्रकार तर्क-वितर्क कर ही रहा था कि एकाएक राजमहल में फिर खलबली मची। कोई ज़ोरों से चिल्ला रहा था—महाराज, यह देखिए 'खून का प्यासा' इस निकुंज में छिपा हुआ है। यह दुष्ट कुमारी चन्द्रप्रभा को उठाए लिए जा रहा है। इसके बाद ही महाराज की कड़कती आवाज़ सुनाई पड़ी। दौड़ो ! जाने न पाए।

'खून के प्यासे' ने चन्द्रप्रभा की गठरी को दृढ़ता से अपनी पीठ पर बांधा और फिर राजमहल की ओर दृष्टि उठाई। उसने देखा कि उस आवाज को सुनकर बहुत से सिपाही उसी निकुंज की ओर दौड़े आ रहे हैं।

अब इनको अपनी वीरता का दिग्दर्शन करा कर ही यहां से हटूंगा—कहकर उसने अपनी तलवार खींच ली और निकुंज के बाहर आकर खड़ा हो गया। उसने देखा कि स्वयं महाराज विजय बहादुरसिंह भी अपने घोड़े पर चढ़े हुए सिपाहियों के साथ इधर ही को चले आ रहे हैं। एक क्षण में सब सिपाही उसके पास पहुंच गए और उन्होंने उसे चारों ओर से घेर लिया।

महाराज ने कड़क कर कहा—क्यों रे दुष्ट, मेरी पुत्री को कहां उठाए ले जा रहा है?

'खून का प्यासा'—महाराज 'खून का प्यासा' इस बात का उत्तर तलवार से देना चाहता है।

महाराज ने सिपाहियों को ललकारा। तलवारें चलने लगीं, परन्तु वाह रे 'खून का प्यासा' उसका हस्तलाघव देखकर सिपाहियों की कौन कहे स्वयं महाराज विजय बहादुरसिंह भी आश्चर्यचकित हो गए। वह तलवार चलाता हुआ जिधर निकल जाता था उधर ही दस-बीस सिर उड़ते हुए दिखाई पड़ते थे।

एकाएक 'खून के प्यासे' की दुधारी तीव्र रूप से प्रकाशमान हो उठी। उसमें से इतनी तीव्र ज्योति निकली कि महाराज तथा उनके सिपाहियों की आंखें ढंप गईं। उस प्रखर ज्योति के आगे किसी के भी नेत्र खुले न रह सके।

थोड़ी देर बाद वह ज्योति मन्द पड़ गई और अब उन्होंने अपनी आंखें खोलीं, तो देखा 'खून का प्यासा' राजकुमारी चन्द्रप्रभा को लेकर जा चुका था।

५

उस कुएं पर जिसे 'जंगली' ने अपना निवासस्थान बताया था, प्रेतराज उदास बैठा था। वह 'जंगली' की प्रतीक्षा कर रहा है क्योंकि उसने इसे राजकुमार जंगबहादुर को छुड़ाने के विषय में बातचीत करने के लिए बुलाया था।

प्रेतराज को 'जंगली' की प्रतीक्षा करते-करते पहर भर दिन चढ़

आया परन्तु फिर भी उसकी सूरत न दिखाई पड़ी। प्रेतराज यह सोचकर कि शायद 'जंगली' किसी विशेष कार्य में फंस गया हो, वहां से जाना ही चाहता था कि कुएं के भीतर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। प्रेतराज ने कुएं के भीतर झांका, तो देखता क्या है कि नीचे सूखी जमीन दिखाई पड़ रही है और वहीं से 'जंगली' ने कहा—प्रेतराज ! अपनी कमन्द के सहारे नीचे उतर आओ।

प्रेतराज कमन्द लगाकर कुएं में उतर गया और वहां यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि कुएं की भीतरी दीवाल में कई एक दरवाजे बनें हुए हैं, जिनमें से एक इस समय खुला हुआ है। वह दरवाजा लगभग ५० गज लम्बी एक प्रशस्त सुरंग का 'प्रवेश द्वार' था। प्रेतराज को लिए हुए 'जंगली' इसी दरवाजे में घुसा और 'सुरंग मार्ग' से होकर एक हरे-भरे उद्यान में पहुंच गया। उद्यान के दक्षिण सिरे पर एक छोटा-सा, परन्तु साज-सजावट से परिपूर्ण भवन बना हुआ था। 'जंगली' प्रेतराज को लिए हुए इसी भवन की ओर चला। प्रमुख द्वार पर पहुंचकर उसने उसे खोला और प्रेतराज को अपने विश्राम-गृह में ले आया।

प्रेतराज—आप चम्पा की क्यों रक्षा करना चाहते हैं।

'जंगली'—प्रेतराज ! तुम तर्क-वितर्क करने में अत्यधिक निपुण हो ? अच्छा ! जब तुम इतने आग्रहपूर्वक पूछ ही रहे हो तो सुनो। परन्तु स्मरण रहे ! तुम मेरा भेद गुप्त रखने के लिए शपथ खा चुके हो।

प्रेतराज—जी हां, वह मुझे भली प्रकार स्मरण है। आप विश्वास रखें इस जीवन में उसके प्रतिकूल चलना मेरे लिए असम्भव है।

'जंगली'—शाबाश ! अच्छा तो सुनो। रूपनगर की महारानी रूपवती का आचार-व्यवहार ठीक नहीं है। स्त्री-जाति में उसके जैसी दुराचारिणी अभी तक मेरे देखने में नहीं आई। वह वर्ष भर में अनेकों राजकुमारों को पकड़वा मंगवाती है और उनसे दुर्व्यवहार किया करती है। प्रत्येक राजकुमार को अधिक से अधिक एक मास तक अपने पास रखती है, तत्पश्चात उन्हें अपने 'रूपगढ़ी' नामक तिलस्म में कैद कर देती है। यही उसका नित्य का धंधा है। परन्तु उसका व्यभिचार अत्यंत गुप्त है। मुझे तथा मेरे भाई प्रेतात्मा को उसके इस दुराचार का पता लग गया है। उसका यह अमानुषिक अत्याचार देखकर हम लोगों का हृदय द्रवित हो गया। हम लोगों ने उसको सन्मार्ग पर लाने का बीड़ा उठाया। इस कार्य में हम लोगों ने अपनी-अपनी पुत्रियों से सहायता लेने का निश्चय किया। हम लोगों के सतत प्रयत्नों से मेरी पुत्री

चन्द्रकला रूपवती की सबसे प्यारी सखी बन गई और प्रेतात्मा की पुत्री चम्पा उसकी विश्वसनीय ऐयार। अब आशा है कि शीघ्र ही उसके दुराचार का अन्त होगा, क्योंकि हम लोगों की पुत्रियां उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न कर रही हैं।

प्रेतराज—तब तो चम्पा को अवश्य बचाना चाहिए।

'जंगली'—उसके लिए तुम चिन्ता न करो। तुम्हारे राजकुमार को भी इसी रूपवती ने अपनी कुत्सित वासनाओं की पूर्ति करने के लिए चम्पा द्वारा कैद करवाया था और शोर कर दिया था कि 'खून का प्यासा' उन्हें उठा ले गया।

प्रेतराज—तब तो हम लोगों का 'खून के प्यासे' पर सन्देह करना व्यर्थ ही था।

'जंगली'—लेकिन जब 'खून के प्यासे' ने यह सुना कि रूपवती उसके ऊपर झूठा कलक लगा रही है, तो वह बहुत क्रोधित हुआ। वह उसी समय रूपनगर गया और राजकुमार को अपने यहां उठा लाया। यदि राजकुमार रूपनगर में होते तो इनका छूटना विशेष कठिन न था। परन्तु अब तो उन्हें छुड़ाने के लिए एक बड़ी भारी शत्रुता का सामना करना होगा।

प्रेतराज—तो अब क्या करना चाहिए?

'जंगली'—इस समय हमारे सन्मुख मुख्यतः तीन प्रश्न हैं। कुमार को छुड़ाना, चम्पा की रक्षा करना तथा सोनपुर का उद्धार—पहले दो कामों को तो मैं स्वयं करूंगा। रह गया सोनपुर की रक्षा का भार! तो उसके लिए अपने गुरु भाई प्रेतात्मा को नियुक्त करूंगा।

इतना कहकर 'जंगली' ने फिर मेज़ का कोई खटका दबाया, जिससे सुरीली आवाज़ें आने लगीं। 'जंगली' ने टेलीफोन का चोंगा मुंह से लगाकर पूछा—कौन? प्रेतात्मा?

आवाज़ आई—हां, तुमने मुझे क्यों बुलाया?

'जंगली'—प्रेतात्मा! हम लोगों ने 'खून के प्यासे' को सन्मार्ग पर लाने के लिए, गुप्त रीति से घोर प्रयत्न किया परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। मेरी समझ से तो अब बिना सामने आए काम नहीं चलेगा।...तुम सुनकर आश्चर्य करोगे कि वह दुष्ट महाराज चन्द्रदीपसिंह को जिसके उपकार का ऋण भारत के बच्चे-बच्चे पर है, कष्ट देना चाहता है। अतः अब अपने हृदयसे गुरुभाई के प्रेम को निकाल संग्राम भूमि में उतर पड़ो और उसके इस दर्प को चूर-चूर कर डालो।

आवाज़—बहुत अच्छा! मैं यथाशक्ति सोनपुर की रक्षा करने के

ए प्रयत्न करूंगा। तुम निश्चित रहो।

'जंगली'—परन्तु देखो! उसे अधिक कष्ट न देना। उसने कितना ही पाप किया है तो क्या हुआ, है तो अपना गुरुभाई ही।

आवाज़—इसका तो मुझे तुमसे भी अधिक ध्यान है। तुम तो जानते ही हो कि मैं उसे कितना प्यार करता हूं।

'जंगली'—लेकिन उस प्यार के वश होकर अपनी कर्तव्यपरायणता को मत भूल जाना।

कहकर 'जंगली' ने चोंगा मेज़ पर रख दिया और प्रेतराज से कहा—प्रेतराज! यह समय बड़ा ही अमूल्य है। उठो, मैं इसी समय 'खून के प्यासे' का पीछा करना चाहता हूं। नहीं तो चम्पा जो इस समय रूपनगर को लौट रही होगी, उसके हाथ से अवश्य ही सताई जाएगी।

'जंगली' के कहने पर प्रेतराज शीघ्र ही तैयार हो गया। 'जंगली' ने अपने अस्तबल से दो घोड़े लिए और एक दूसरे ही मार्ग से प्रेतराज को लिए हुए बाहर आया। घोड़ों पर सवार होकर दोनों ने जंगल ही जंगल दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

लगभग दो कोस चले जाने के बाद ये लोग एकाएक ठिठककर खड़े हो गए, क्योंकि पास ही कहीं दो मनुष्यों के ज़ोर-ज़ोर से बातचीत करने की आवाज़ सुनाई पड़ी। आवाज़ का अनुसरण करते हुए ये दोनों उसी ओर बढ़े और शीघ्र ही उस स्थान पर पहुंच गए, जहां एक नकाबपोश, जिसकी कमर पेटी से हाथ भर लम्बे सैंकड़ों छुरे लटक रहे थे तथा जिसकी खूनी आंखें नकाब के भीतर से भी प्रकाशमान हो रही थीं, एक स्त्री से कह रहा था···

नकाबपोश—क्यों री! तू तो रूपनगर की महारानी रूपवती की ऐयार चम्पा है न?

स्त्री—मैं कोई भी होऊं तुम्हें इससे क्या?

'जंगली' और प्रेतराज एक झाड़ी में छिपकर यह दृश्य देखने लगे। 'जंगली' ने प्रेतराज से कहा—देखो प्रेतराज! अभी तक तो तुमने 'खून के प्यासे' का नाम ही भर सुना था, आज उसकी सूरत भी देख लो।

प्रेतराज—क्या यही 'खून का प्यासा' है? उफ! बड़ा ही भयंकर है···परन्तु यह स्त्री कौन है?

'जंगली'—यही प्रेतात्मा की पुत्री तथा रूपवती की विश्वसनीय ऐयारा चम्पा है। आज मेरे शागिर्द बलदेव ने इसी घटना की खबर मुझे

दी थी ।

प्रेतराज—(आश्चर्य) अरे ! उन दोनों में तो लड़ाई हो रही है। (चौंककर) देखिए ! देखिए ! वह दुष्ट चम्पा को मारना ही चाहता है ।

'जंगली' ने उस ओर देखा तो वस्तुतः 'खून का प्यासा' चम्पा का वध करने के लिए प्रस्तुत था । यह देखते ही उसने अपने घोड़े को एड़ मारी और उस ओर घोड़ा बढ़ाया जहां 'खून का प्यासा' चम्पा से लड़ रहा था । कुछ दूर ही से उसने ये शब्द कहे—खबरदार ! इस स्त्री पर हाथ न उठाना ।

प्रेतराज झाड़ी में ही बैठा रहा और वहीं से यह सब तमाशा देखने लगा । उसने देखा कि 'जंगली' और 'खून के प्यासे' में लड़ाई हो रही है परन्तु 'जंगली' तलवार चलाने में इतना निपुण नहीं जान पड़ता था, जितना 'खून का प्यासा' । अन्त में 'जंगली' अपने घोड़े पर चढ़ कर भाग चला । उसे भागते हुए देखकर 'खून के प्यासे' ने अपनी पेटी से एक छुरा निकाल कर 'जंगली' के घोड़े पर चलाया । छुरा लगते ही घोड़ा एक बार कांपा, तत्पश्चात् चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा । 'जंगली' भी गिरते गिरते बचा । वह अपने घोड़े को बेकार जान कर भागना ही चाहता था कि एक दूसरा छुरा आकर उसे भी लगा, और वह भी यहीं कांप कर बेहोश हो गया । प्रेतराज ने सोचा कि यदि 'जंगली' 'खून के प्यासे' के हाथ पड़ जाएगा तो उसका प्राण बचाना असम्भव होगा । यह सोचकर वह तेजी के साथ झाड़ी से निकला और बेहोश 'जंगली' को उठा कर झाड़ी की ओर भाग चला । परन्तु दूसरे ही क्षण 'खून के प्यासे' के चलाए हुए तीसरे छुरे ने उसे भी धराशायी कर दिया । 'खून का प्यासा' प्रसन्न-बदन इन दोनों के पास आया और दोनों को एक ही चादर में बांधकर पीठ पर रख लिया और चलता बना ।

६

दरबार लगा हुआ है । सभासद यथायोग्य स्थान पर चिन्ता में निमग्न बैठे हुए हैं । दरबार में एक प्रकार की उदासीनता-सी छाई हुई है । महाराज चन्द्रदीपसिंह के रह-रह कर दीर्घ निश्वास लेने के कारण उनकी हार्दिक व्यथा का पता भली-भांति लगता है ।

थोड़ी देर के बाद महाराज उठ खड़े हुए और धीमी किन्तु गम्भीर

वाणी में बोले—प्यारे भाइयो ! सोनपुर की रक्षा का प्रश्न बड़ा ही विकट है। आप लोग जानते ही होंगे कि 'खून के प्यासे' ने जिस दिन खजाना लूटने की धमकी दी थी, वह आज ही है तथा यह भी जानते हो कि वह कितना दुष्ट तथा कातिल है। दीपचन्द को गए दो दिन से ऊपर बीत चुके हैं, परन्तु उसका भी कुछ समाचार नहीं मिला ? न मालूम उस बेचारे पर क्या बीत रही होगी।

"वह 'खून के प्यासे' द्वारा मारा गया"...एकाएक यह आवाज़ आई और तत्काल ही एक सफेदपोश ने दरबार में प्रवेश किया। इस सफेदपोश की पीठ पर दो गठरियां थीं जिन्हें उसने आते ही भूमि पुर रखा और झुककर महाराज़ को साष्टांग दण्डवत किया।

महाराज ने पूछा—भाई ! तुम कौन हो ? और तुम्हारी इन गठरियों में क्या है ?

सफेदपोश—महाराज ! मेरा नाम प्रेतात्मा है और मेरी इन गठरियों में आपके लिए दो अमूल्य भेंट हैं।

इतना कहकर प्रेतात्मा ने अपनी एक गठरी खोली। उसमें एक सिर कटी लाश बंधी हुई थी।

महाराज ने पूछा—यह लाश किसकी है !

प्रेतात्मा—महाराज ! यह लाश आपके स्वामिभक्त ऐयार दीपचन्द की है, जो 'खून के प्यासे' द्वारा मारा जा चुका है।

महाराज—आखिर उस दुष्ट ने दीपचन्द की जान ले ही ली।

प्रेतात्मा ने अपनी दूसरी गठरी खोली। लोगों ने देखा कि एक लम्बा, गठीले शरीर वाला पुरुष, जिसका अंग-प्रत्यंग काले लबादे से ढका हुआ था तथा जिसकी कमर वाली पेटी में हाथ भर लम्बे सैंकड़ों छुरे लटक रहे थे, उस गठरी में बेहोश पड़ा हुआ था।

महाराज ने पूछा—प्रेतात्मा ! यह कौन है ?

प्रेतात्मा—महाराज आप लोग जिसके विचित्र कारनामे सुनकर आश्चर्यचकित हो उठते थे, जिसके अजय दुधारे की करामातों को सुन कर दांतों तले उंगली दबाते थे, जिसने अपने क्रूर कर्मों द्वारा तहलका मचा दिया है, जिसने अपनी वीरता प्रदर्शित कर बड़े-बड़े वीरों के छक्के छुड़ा दिए हैं वही दुष्ट 'खून का प्यासा' आपके सामने बेहोश पड़ा है।

महाराज—(प्रसन्न होकर) क्या मेरे राज्य का कण्टक यही है। (उठ कर प्रेतात्मा को प्रेमपूर्वक गले से लगाकर)—आह ! प्रेतात्मा ! मैं तुम्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूं। तुमने आज मेरे प्रण की लाज रख ली। यद्यपि मैं तुमसे परिचित नहीं हूं, परन्तु तुम्हारे इन महान कार्य

से मुझे तुम्हारे ऊपर अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। आज से यह समग्र सोनपुर राज्य तुम्हारा है और तुम इसके रक्षक तथा शासक हुए। तुम तो जानते हो कि मेरे कोई सन्तान नहीं। मेरा बड़ा पुत्र दो ही वर्ष की अवस्था में गायब कर दिया गया था। छोटे पुत्र राजेन्द्रसिंह को भी गायब हुए तीन चार वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु उसका कुछ भी पता न लगा। अब तो मैं उसकी ओर से निराश हो चुका हूं। अतः मैं इस राज्य को तुम्हारे हाथों में सौंपकर आशा करता हूं कि मेरी ही तरह तुम दोनों की रक्षा करते हुए इस राज्य की कीर्ति को अमर बनाने का प्रयत्न करोगे।

प्रेतात्मा—महाराज! मैं तो आपका सेवक ही हूं। अपने प्राण न्योछावर करके भी मैं आपकी तथा आपके राज्य की रक्षा करूंगा। परन्तु महाराज! मुझे राज्य की अभिलाषा नहीं है। यदि ईश्वर चाहेगा तो आपका राज्य पुनः पहले ही की तरह हरा-भरा हो जाएगा। और एक दिन राजकुमार राजेन्द्रसिंह आपकी बगल में बैठे हुए दिखाई पड़ेंगे।

महाराज—क्या मैं राजेन्द्र को फिर से पा सकूंगा?

प्रेतात्मा—यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है महाराज! आजकल राजकुमारों को भक्षण करने वाली एक राक्षसनी उत्पन्न हो गई है। उसका पांच-छह वर्षों से यही धन्धा है कि वह अपने ऐयारों द्वारा नित्य नये-नये राजकुमारों को पकड़वा मंगाती है, और उनसे दुर्व्यवहार कर उन्हें कैद कर दिया करती है! मैं उसका दमन करने का प्रयत्न कर रहा हूं। आशा है कि मैं शीघ्र ही इस कार्य में सफलता प्राप्त करूंगा।

महाराज—यदि तुम मेरा इतना उपकार कर दो तो तुम्हारा आजन्म आभारी रहूंगा।

प्रेतात्मा—यह कोई कहने की बात है महाराज। मैं तो आपका सेवक ही ठहरा।...अच्छा! अब मुझे आज्ञा दीजिए। आज रात्रि में मैं आपके खास खज़ाने में ही सोना चाहता हूं क्योंकि मुझे भय है शायद 'खून के प्यासे' के शागिर्द लोग, जो उसके ही समान आफत के परकाले हैं, कुछ उपद्रव मचाएं और अपने गुरु की गिरफ्तारी का बदला लें।

महाराज—बहुत अच्छा! ऐसा ही होगा।

प्रेतात्मा—और इस 'खून के प्यासे' को हथकड़ी-बेड़ी पहना कर दोहरे जंगले के भीतर रखिएगा तथा पहरे का प्रबन्ध कर दीजिएगा, अन्यथा छूटते ही गजब ढा देगा!

इतना कहकर प्रेतात्मा चला गया। उसके जाने के बाद महाराज

चन्द्रदीपसिंह ने मन्त्री की ओर संकेत करके कहा, मन्त्रिवर ? राज-ऐयार को बुलाकर इस दुष्ट 'खून के प्यासे' को उसे सौंप दीजिए और उससे कहिए कि वह इसे ले जाकर 'बन्दीगृह' में रखे तथा इस पर कड़े पहरे का प्रबन्ध करे और सेनापति को आज्ञा दीजिए कि वह राज्य की समस्त सेना को लाकर राजमहल को चारों ओर से घेर लें। यदि राजमहल के सन्निकट कोई अपरिचित मनुष्य दिखाई पड़े तो तत्काल ही उसका सिर धड़ से अलग कर दें।

७

अर्द्धरात्रि का समय है। कृष्णपक्ष की भयावनी अंधेरी अपना साम्राज्य फैलाए हुए है। 'सोनपुर बन्दीगृह' में एक नकाबपोश हथ-कड़ी-बेड़ी में जकड़ा एक संगीन कोठरी में बन्द पड़ा है। इस नकाबपोश का अंग-प्रत्यंग काले कपड़े से ढका हुआ है ! नकाब के भीतर से उसकी आंखें अंगारे की तरह जल रही हैं तथा उसकी कमर वाली पेटी में लट-कते हुए छुरे उसकी दुष्टता का परिचय दे रहे हैं। यह वही 'खून का प्यासा' है जिसका नाम सुनते ही बड़े-बड़े वीर तथा राजा महाराजा कांप उठते हैं।

'खून का प्यासा' के शिष्य रघुवंश ने सोनपुर के ऐयार राजनाथ को जिसकी संरक्षकता में 'खून के प्यासे' को कैद में रखा गया था, गिरफ्तार कर लिया और आज 'खून के प्यासे' को मुक्त कर दिया।

'खून का प्यासा'—शाबास ! आज तुम मुझे इस कैद से छुटकारा देकर, अपने गुरु के ऋण से उन्मुक्त हो गए। मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं !

रघुवंश ने अपने झोले में से कागज की बनी हुई एक छोटी-सी गेंद निकाली और उसे सिपाहियों की ओर फेंका। गेंद जाकर सिपाहियों के मध्य में गिरी और बिना किसी प्रकार का शब्द किए हुए फूट गई। उसमें से निकले हुए जहरीले धुएं ने सिपाहियों को कुछ भी करने का अवसर न दिया। वे वहीं बेहोश होकर गिर पड़े।

रघुवंश ने कहा—लीजिए गुरुजी ! सब सिपाही बेहोश हो गए। अब आपका क्या करने का विचार है ?

'खून का प्यासा'—मैं इसी समय खजाना लूटना चाहता हूं।

रघुवंश—परन्तु राजमहल के चारों ओर कड़ा पहरा है।

'खून का प्यासा'—कोई बात नहीं। मैं गुरुवर के दिए विचित्र

यन्त्रों से काम लूंगा। मैं यहीं से राजमहल की ओर जा रहा हूं। तुम सब सावधानी से यहीं छिपे रहना तथा बातचीत करने का यन्त्र (मशीन) अपने हाथों में लिए रहना। संकट आते ही मैं तुम्हें सूचित करूंगा तब प्यारेलाल आदि के साथ मेरी सहायतार्थ पहुंच जाना।

रघुवंश—बहुत अच्छा। परन्तु शत्रु के घर में घुस रहे हैं, सावधानी से कार्य कीजिएगा।

'खून का प्यासा'—तुम निश्चिन्त रहो! अब मेरा कोई भी कुछ नहीं कर सकता।

इतना कहकर 'खून के प्यासे' ने अपना ऐयारी का झोला खोला और उसमें से एक छोटा-सा बक्स निकाला। यह बक्स काले रंग का था, तथा उसका आकार बहुत ही छोटा था। बक्स निकालकर उसने उसका कोई खटका दबाया। खटका दबाते ही उस छोटे बक्स का आकार परिवर्तित होने लगा और पूरा बढ़कर एक बड़ी कुर्सी के आकार का हो गया। 'खून का प्यासा' अपने सब सामान सहित इसी कुर्सी पर जा बैठा। उसके बैठते ही वह यन्त्र डगमगाया और तुरन्त ही गुब्बारे की तरह आकाश में उड़ गया।

सोनपुर राजमहल पांच मंज़िला बना हुआ था। पांचवीं मंज़िल की छत पर केवल एक ही कोठरी थी और इसी में खज़ाना रक्खा जाता था। यह कोठरी इतनी संगीन बनी हुई थी कि यदि उसके भीतर से कोई चिल्लाए तो भी आवाज़ बाहर न पहुंचे। राज्य की सारी सेना इस समय राजमहल को चारों ओर से घेरे हुए पहरा दे रही थी।

'खून का प्यासा' अपने यन्त्र पर उड़ता हुआ, सेना को पार कर गया, परन्तु किसी की दृष्टि उस पर न पड़ी, क्योंकि उसका यन्त्र बहुत ही ऊंचाई से उड़ रहा था? खज़ाने वाली कोठरी के पास पहुंचकर उसने फिर अपने यन्त्र का कोई खटका दबाया। खटका दबाते ही वह यन्त्र नीचे उतरने लगा और एक क्षण में ही 'खून के प्यासे' ने अपने को खज़ाने वाली कोठरी की छत पर पाया।

कोषगृह की छत पर, उसने यन्त्र को छोटा करके अपने झोले में रख लिया और 'कोषगृह' में प्रवेश करने का उपाय सोचने लगा। 'मुख्यद्वार' में प्रविष्ट होने पर पकड़े जाने का भय था। अतएव उसने छत में छेद करके नीचे उतरने का विचार किया। उसने अपने झोले में से एक दूसरा यन्त्र निकाला और उसके द्वार उसने मोटी लोहे की चादर से पटी हुई छत से नीचे उतर जाने योग्य एक छेद बना ही लिया।

एक बार उसने अपने चारों ओर देखा। वहां से दूर-दूर तक का

दृश्य दिखाई पड़ रहा था क्योंकि यह राजमहल का सबसे ऊपरी भाग था। नीचे चारों ओर टिड्डियों के समान सेना फैली हुई थी। स्वयं सेनापति भी हाथ में नंगी तलवार लिए हुए इधर-उधर टहल रहा था। उसे क्या मालूम था कि 'खून का प्यासा' सबकी आंखों में धूल झोंक-कर कोषगृह की छत पर पहुंच गया है और किंचित समय ही में 'सोनपुर के राज्यकोष' का वारा-न्यारा होने वाला है।

इस बात का निश्चय करके कि कोई भी उसकी इस गति का निरीक्षण नहीं कर रहा, 'खून का प्यासा' बहुत ही धीरे-से खजाने की कोठरी में उतर गया। परन्तु वहां पहुंचते ही सन्न रह गया क्योंकि उसकी दृष्टि प्रेतात्मा पर पड़ी। जो उसी जगह बिछी हुई एक चारपाई पर तकिये के सहारे बैठा हुआ उसकी ओर देखकर हंस रहा था।

प्रेतात्मा ने महाराज चन्द्रदीपसिंह से खज़ाने वाली कोठरी में सोने की आज्ञा मांगी थी और महाराज ने इसे स्वीकार भी कर लिया था। अस्तु प्रेतात्मा सन्ध्याकाल से ही खज़ाने में शयन कर रहा था। कुछ देर पहले, जब कि 'खून के प्यासे' ने अपने यन्त्र द्वारा छत में छेद किया था, कुछ खटपट की आवाज़ सुनकर प्रेतात्मा की नींद उचट गई थी।

'खून के प्यासे' को देखकर प्रेतात्मा जोरों से हंस पड़ा और बोला, तुम आ गए दुर्जय ? यह तो मैं पहले से ही समझे हुए था। आओ ! इस चारपाई पर बैठ जाओ और बताओ कि अब तुम्हारा विचार क्या है ? मैं तुम्हें अब भी उतना प्यार करता हूं, जितना पहले किया करता था। परन्तु तुम्हारे इस नीच कर्मों को देखकर मुझे तुम्हारे ऊपर घृणा उत्पन्न हो गई।

'खून का प्यासा'—प्रेतात्मा ! तुम धन्य हो। तुम्हारा विचार तथा तुम्हारी कर्तव्यपरायणता धन्य है।

प्रेतात्मा—दुर्जय ! तुम दिन-प्रतिदिन पाप के गढ़े में गिरते ही जा रहे हो। परन्तु तुम्हें यह नहीं मालूम कि पापों का अन्तिम परि-णाम क्या होता है।

'खून का प्यासा'—मालूम है प्रेतात्मा ? अब मुझे भी अपना यह जीवन घृणास्पद प्रतीत हो रहा है। अब शीघ्रातिशीघ्र मेरे जीवन में एक विशेष परिवर्तन होगा।

खजाने की कोठरी में एक भी खिड़की न होने के कारण बड़ी ही गर्मी थी। उस गर्मी को दूर करने के लिए 'खून के प्यासे' ने अपने लबादे में से एक छोटा-सा रूमाल निकाला और उसी से अपने मुख पर हवा करने लगा। रूमाल से निकलती हुई चेतनाहीन कर देने वाली

मदमस्त सुगन्ध कमरे में फैलने लगी। पहले तो प्रेतात्मा का ध्यान इस ओर नहीं गया परन्तु थोड़ी ही देर बाद जब उसका माथा घूमने लगा, तब वह समझ गया कि 'खून के प्यासे' ने मुझे धोखा दिया है। उसे इस विश्वासघात पर क्रोध आया।

वह सरोष बोला—तुमसे ऐसे विश्वासघात की कभी आशा नहीं थी दुर्जय ! मैं यह न समझता था कि तुम मुझे भी धोखा देने की चेष्टा करोगे।

'खून का प्यासा'—और मुझे भी तुमसे यह आशा नहीं थी प्रेतात्मा कि तुम एकाएक पहुंचकर मुझे इस प्रकार गिरफ्तार कर लोगे तथा महाराज चन्द्रदीपसिंह के हवाले कर दोगे।

प्रेतात्मा—नीच ! जितना पाप तूने किया था उसके फलस्वरूप यह दण्ड कुछ भी नहीं था। अच्छा ठहर ! मैं तो बेहोश होता ही हूं साथ ही तुझे बेहोश कर दूंगा ताकि तू खज़ाने पर हाथ न उठा सके।

इतना कह प्रेतात्मा ने अपने ऐयारी के झोले में से एक छोटा-सा गेंद निकाला और उसे 'खून के प्यासे' की नाक पर ज़ोर से फेंका। गेंद उसकी नाक पर जाकर लगा और एक हल्की आवाज़ के साथ फट गया। तथा उसमें से निकले हुए धूल-दृश्यकणों से उसका सारा मुंह भर गया। परन्तु यह देखकर प्रेतात्मा के आश्चर्य की सीमा न रही कि 'खून का प्यासा' बेहोश होने के बदले उसी प्रकार खड़ा हुआ हंस रहा है। 'प्रेतात्मा तुम्हारे ये गेंद अब मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मैंने इसका प्रबन्ध पहले से ही कर लिया है।'

'खून के प्यासे' की रूमाल से निकली हुई चेतनाहीन कर देने वाली सुगन्ध का असर अब तक 'प्रेतात्मा' पर भली प्रकार हो चुका था। अतः थोड़ी ही देर में वह भूमि पर गिर पड़ा। उसको गिरते देखकर 'खून का प्यासा' धीरे-से हंस पड़ा। उसने प्रेतात्मा को एक चादर में बांधा तत्पश्चात् उस गठरी को रस्सी द्वारा अपनी पीठ पर कस लिया।

इतना कर चुकने पर उसने झोले में से एक विचित्र प्रकार का यन्त्र निकाला जो न तो बहुत भारी था और न बहुत छोटा। उसने उस यन्त्र को भूमि पर रख दिया और उसका कोई खटका दबाया। खटका दबाते ही एक प्रकार की बहुत ही महीन आवाज़ से कोठरी गूंज उठी और उस मशीन के एक भाग से यह आवाज़ आई—गुरुजी, इस समय आप कहां हैं ? मैं हूं रघुवंश !

'खून के प्यासे' ने उस यन्त्र से मुंह लगाकर कहा—मैं इस समय खास खज़ाने वाली कोठरी में हूं। मैंने प्रेतात्मा को गिरफ्तार कर लिया

है और अब खजाने की देखभाल करने जा रहा हूं। तुम आगे सावधानी से छिपे रहना तथा बाहर किसी प्रकार का शोर-गुल मचते ही खबर देना।

इतना कहकर उसने मशीन झोले में रखली और खजाने की ओर दृष्टि उठाई। हीरे-जवाहरात, स्वर्णमुद्राएं, आभूषण आदि एक ओर रखे हुए थे। कागजात, जवाहरात तथा आभूषण आदि जो इधर-उधर तितर-बितर पड़े हुए थे उनको 'खून के प्यासे' ने एक स्थान पर इकट्ठा करके उनके ऊपर कोई मसाला छिड़का और तब अपने झोले में से एक विचित्र यंत्र निकालकर उस मसाले में आग लगा दी। आग जोरों से जलने लगी। न मालूम उस मसाले में क्या असर था कि सोने-चांदी के आभूषण भी लकड़ी की तरह जल-जलाकर राख होने लगे। यह देखकर 'खून का प्यासा' प्रसन्नतापूर्वक हंस पड़ा और धीरे-से बड़बड़ाया—वाह अब जब महाराज चन्द्रदीपसिंह प्रातःकाल अपने खजाने का दर्शन करने आवेंगे और इन अशर्फियों और कागजातों को, जो मेरे अद्भुत मसाले के असर से अभी-अभी राख हो जाएंगे देखते ही उन्हें मालूम हो जाएगा कि 'खून का प्यासा' जो कुछ कहता है उसे अवश्य ही पूरा करता है। हं-हं···।

हंसते हुए उसने 'बातचीत करने का यन्त्र' निकाला और उसका खटका दबाया। यन्त्र के एक भाग से आवाज आई—क्या समाचार है गुरुजी ? मैं हूं रघुवंश !

'खून के प्यासे' ने उत्तर दिया—खजाना जलकर खाक हो रहा है। तुम लोग सीधे घर चलो और कैदियों को इकट्ठा करो ! मैं आज अपना दरबार करके अपने कैदियों से दो-दो बातें करना चाहता हूं। चलते समय जरा रूपनगर का भी समाचार लेते चलना कि रूपवती ने मेरे प्रेम को स्वीकार किया या नहीं। मैं भी दो घण्टे के अन्दर घर पहुंच जाऊंगा।

आवाज—बहुत अच्छा।

तत्पश्चात् 'खून के प्यासे' ने यन्त्र को झोले में रख लिया और उस छेद द्वारा जिसे उसने कोषगृह में प्रवेश करने के लिए स्वयं बनाया था, कोठरी की छत पर आ गया। उसने फिर एक बार अपने चारों ओर दृष्टि डाली।

अपने चारों ओर एक दृष्टि डालकर 'खून के प्यासे' ने लिखने का सामान निकाला और पत्र लिखने लगा—

खून—२

महाराज चन्द्रदीपसिंह !
जरा अपने खजाने की दशा देखिएगा। बन्दा तो अब जा रहा है।
—वही 'खून का प्यासा'

इस पत्र को लिखकर उसने छुरे के दस्ते में बांधा और उस छुरे को नीचे, सिपाहियों के बीच फेंक दिया। छुरा फेंकते ही सिपाहियों में खलबली मच गई। सब सिपाही कोषगृह की ओर दौड़ पड़े, क्योंकि 'खून के प्यासे' ने ललकार कर वहां रहने की सूचना दे दी थी।

सिपाहियों को अपनी ओर आते हुए देखकर उसने अपना 'कुर्सी-यन्त्र' निकाल लिया और उसका कोई खटका दबाया। वह यन्त्र बढ़ाकर एक कुर्सी के समान हो गया। 'खून का प्यासा' अपने सब सामान सहित, बेहोश प्रेतात्मा को लिए हुए, अपने इस विचित्र यंत्र पर जा बैठा।

करीब ही था कि सिपाही लोग उसके पास पहुंचकर उसको पुनः गिरफ्तार कर लेते कि इतने में ही वह 'यन्त्र' डगमगाया और सर्र से आकाश को उड़ गया।

८

नन्दन वन के उस विचित्र कुएं पर जिसमें 'जंगली' रहता है, आज हम दो नकाबपोशों को बैठे हुए देख रहे हैं। सन्निकट ही दो जीन कसे घोड़े भी बंधे हुए हैं।

पहला—रतन ! सरकार का दिया हुआ पुरजा तो तुम्हारे ही पास है न ?

रतनसिंह—हां !

पहला—उसे तुम्हें ही चुनार में महाराज खंगबहादुरसिंह के पास पहुंचाना होगा।

रतनसिंह—और तुम ?

पहला—मैं तब तक यहीं पर बैठा हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूंगा।

रतनसिंह—बहुत अच्छा !...परन्तु रज्जन ! यह तो बताओ कि सरकार ने इस पुरजे में क्या लिखा है ?

रज्जन—इस पुरजे में महाराज खंगबहादुरसिंह को उनकी कन्या कनकलता को उठा लाने की धमकी दी गई है।

रतनसिंह—क्या ?

रज्जन--क्योंकि चुनार राज्य से सरकार की बहुत पुरानी शत्रुता है।

रतनसिंह--कैसी शत्रुता ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

रज्जन--तुम जान ही कैसे सकते हो? तुम तो अभी नये-नये आए हो न... अच्छा ! यदि तुम नहीं जानते तो सुनो ! वह गुप्त हाल में तुमसे संक्षेप में ही कह रहा हूं—आज से दस वर्ष पहले सरकार चुनार राज्य के प्रधान मन्त्री थे।

रतनसिंह—आयं।

रज्जन—हां और वहुत ही योग्यतापूर्वक राज्य प्रबन्ध किया करते थे। परन्तु किसी कारण-विशेष से वे महाराज खंगबहादुरसिंह से रुष्ट हो गए। वह कारण था ?—ठीक तो मुझे नहीं मालूम परन्तु फिर भी इतना जानता हूं कि महाराज ने सरकार के ऊपर किसी प्रकार का घोर अन्याय किया था, जिसे वे सहन न कर सके और उन्होंने राज्य के मन्त्रित्व से अपना हाथ खींच लिया। परन्तु इतने पर भी मन की ज्वाला शान्त न हुई और उन्होंने अपने ऊपर किए गए उस घोर अन्याय, उस अमानुषिक अत्याचार के लिए महाराज से भीषण प्रतिशोध लेने का निश्चय किया।...'शेर का पंजा' इस नकली नाम से उन्होंने चुनार राज्य में हलचल मचा दी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। महाराज ने 'शेर के पंजे' को पकड़ने के लिए सतत प्रयत्न किया, पर असफल रहे। दैवयोग से एक दिन सरकार चुनार राज्य के प्रसिद्ध ऐयार प्रेतराज के हाथ पकड़े गए और उनके सारे परिश्रम पर पानी फिर गया। प्रेतराज सरकार को कैद कर महाराज खंगबहादुरसिंह के सामने लाया। महाराज ने उन्हें प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। परन्तु सरकार किसी प्रकार बच गए और उनके बदले एक निरपराध को प्राणदण्ड मिला। यह हाल आज से सात वर्ष पहले का है। उस समय प्रतिशोध न ले सकने के कारण सरकार को बड़ी ही आत्मग्लानि हुई। उन्होंने इन सात वर्षों के अनन्तर गुप्त रहकर...तप से अथवा और किसी प्रकार से—यह अद्भुत शक्ति पाई है और उस घोर अन्याय का भीषण प्रतिशोध लेने के लिए पुनः 'गुरुघंटाल' के रूप में अवतरित हुए हैं।

रतनसिंह—तो वे किन-किन उपायों से प्रतिशोध लेना चाहते हैं ?

रज्जन—अभी तक तो उनका कोई निर्धारित मार्ग नहीं है। फिर भी मैं यह कह सकता हूं कि इस प्रतोशिध नाटक का प्रथम दृश्य राजकुमारी कनकलता को उठा लाकर महाराज को दुःख पहुंचाना होगा।

रतनसिंह—परन्तु क्या तुम यह कह सकते हो कि सरकार को इस कार्य में सफलता मिल जाएगी।

रज्जन—हूं। तुम आज कैसी बातें कर रहे हो रतनसिंह! क्या तुम नही जानते हो कि जिस समय सरकार 'गुरुघंटाल' की वरदी में खड़े हो जाते हैं, तो वे कितने भयंकर लगते हैं।

रतनसिंह—सो तो मैं भली प्रकार जानता हूं। परन्तु फिर भी मुझे उस दुर्दान्त 'खून के प्यासे की ओर से भय की आशंका हो रही है।

रज्जन—तुम्हारी यह आशका निराधार है रतन! क्योंकि 'खून का प्यासा' भी तो चुनार राज्य का कट्टर शत्रु है।

रतनसिंह—हां! है तो सही। परन्तु इधर सुनने में आया है कि उनके गुरुभाई चन्द्रशेखर, (जो आजकल जंगली बना हुआ है) तथा प्रेतात्मा उसे सन्मार्ग पर लाने का अटूट प्रयत्न कर रहे हैं। इन दोनों की वाकपटुता तो तुम जानते ही हो। इसलिए मुझे भय है कि यदि इन दोनों के समझाने से 'खून का प्यासा' सन्मार्ग पर आ गया तो सरकार को अपने कार्य-सम्पादन में बड़ी ही बाधा उपस्थित होगी क्योंकि वह सरकार को देखते ही पहचान लेगा।

रज्जन—नहीं जी! बाल्यावस्था में उसमें और सरकार में चाहे कितनी भी घनिष्टता रही हो तो क्या''' 'गुरुघंटाल' के वेश में उनको देखकर, उन्हें पहचानना तो दूर रहा''' वह भय से मूर्छित हो जाएगा।

रतनसिंह—तुम भूलते हो रज्जन! तुम्हें नहीं मालूम कि, 'खून का प्यासा' कितना साहसी तथा वीर है। यदि एक बार उनके सामने काल भी आ जाए, तो वह उससे भिड़ जाने का साहस रखता है।

रज्जन—इस वादविवाद से कुछ भी लाभ नहीं रतनसिंह! हमें तो सरकार की आज्ञा का पालन करना ही होगा। अत: अब तुम व्यर्थ की बकबक न करके सीधे चुनार चले जाओ और यह पुरजा महाराज खंगबहादुरसिंह के पास गुप्त रीति से पहुंचा दो।

यह सुनकर रतनसिंह उठ खड़ा हुआ और अपने घोड़े पर सवार होकर चुनार राज्य की ओर प्रस्थान किया।

न मालूम कब से एक नकाबपोश उस कुएं के पास वाली झाड़ी में छिपा हुआ इन दोनों की गुप्त बातें सुन रहा था। जब रतनसिंह चुनार की ओर रवाना हो गया तो वह नकाबपोश भी उसी झाड़ी से बाहर निकला और रतनसिंह के पीछे चल पड़ा। लगभग एक कोस भर चले जाने के बाद, रतनसिंह एक चौराहे पर पहुंचा। यहां पहुंचकर वह अपने घोड़े पर से उतर पड़ा और यह सोचने लगा कि किस मार्ग से चलना

चलना उत्तम होगा। वह अभी सोच ही रहा था कि उसका पीछा करने वाला नकाबपोश उसके सामने आ खड़ा हुआ और उससे बोला—क्यों जी ! अब किधर जाने का विचार है।

उस नकाबपोश को इस प्रकार प्रश्न करते हुए देखकर रतनसिंह क्रोधित हो उठा। उसने नकाबपोश से पूछा—मुझे इस प्रकार टोकने वाले तुम कौन होते हो जी !

नकाबपोश—मैं ?...मैं 'खून के प्यासे' का शागिर्द हूं। मेरा नाम प्यारेलाल है।

रतनसिंह क्या तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ! अच्छा ! तो मेरी सूरत देखकर अपने अविश्वास को दूर कर लो।

इतना कहकर नकाबपोश ने अपनी नकाब दूर कर दी। एका-एक प्यारेलाल को अपने सामने खड़ा हुआ देखकर रतन के मुख से अनायास ही एक चीख निकल पड़ी क्योंकि वह जानता था कि 'खून के प्यासे' के समान ही उसके शागिर्द भी आफ़त के परकाले हैं।

भय से रतनसिंह का बुरा हाल था परन्तु फिर भी उसने अपने हृदय को संभाल कर कहा—तो तुम मुझसे क्या चाहते हो ?

प्यारेलाल—वही पुरजा, जिसे तुम महाराज खगबहादुरसिंह को देने के लिए जा रहे हो।

रतनसिंह—नहीं-नहीं ? वह पुरजा तुम्हें नहीं मिल सकता। तुम उसे किसी प्रकार भी नहीं पा सकते। उसमें तुम्हारे या तुम्हारे गुरु 'खून के प्यासे' के विषय में कोई भी बात नहीं लिखी हुई है।

प्यारेलाल—देखो ! यदि तुम सीधे से वह पुरजा मुझे न दे दोगे, तो विवश होकर मुझे कठोर बनना पड़ेगा।

रतनसिंह ने इस बात का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वरन् यह कहते हुए तलवार संभाल ली कि—'स्वामी के कार्य के लिए मुझे अपने प्राणों का मोह नहीं।'—प्यारेलाल ने भी तलवार खींच ली। कुछ देर तक यों ही लड़ाई होती रही।

अन्त में प्यारेलाल की तलवार की चोट खाकर रतनसिंह भूमि पर गिर पड़ा और संज्ञाशून्य हो गया। प्यारेलाल ने उसकी जेब से वह पुरजा निकाल लिया और चलता बना।

शीघ्र ही घनी अमराई ने उसे अपने आंचल में छिपा लिया।

९

'खून का प्यासा'—सब सामान तो ठीक हो गया न ! रघुवंश !

रघुवंश—जी हां गुरूजी ! आपके कथनानुसार सब सामान ठीक हो चुका है। कैदी भी वहां पहुंचाए जा चुके हैं। बस, अब केवल आपके ही चलने ही देर है।

'खून का प्यासा'—तो चलो मैं तैयार हूं।

'खून के प्यासे' ने रघुवंश के साथ उस कमरे की ओर प्रस्थान किया, जो यहां से दक्षिण की ओर पड़ता था। पास पहुंचकर रघुवंश ने उस कमरे का द्वार खोला और 'खून का प्यासा' भीतर प्रविष्ट हुआ। उसके पीछे-पीछे रघुवंश ने भी कमरे में प्रवेश किया।

कमरे की साज-सजावट अत्यन्त ही उत्कृष्ट थी। स्वच्छ तथा तीव्र प्रकाश में हरे रंग से पुती हुई दीवालें विचित्र शोभा दे रही थीं तथा स्थान-स्थान पर टंगे हुए सुन्दर किन्तु भयानक चित्रों से 'खून के प्यासे' की भयंकरता प्रकट हो रही थी। कमरे के एक ओर गद्दी लगी हुई थी, जिस पर बढ़िया मखमल का सोफ़ा बिछा हुआ था और दो-तीन बड़े-बड़े तकिये भी रखे हुए थे।

कमरे के दूसरी ओर इस गद्दी के ठीक सामने ही—हथकड़ी-बेड़ी से मजबूर, सिर लटकाए, कैदी खड़ा है। सबसे पहले चुनार राज्य के युवराज राजकुमार जंगबहादुरसिंह हैं और इनकी बगल में क्रमशः विजयगढ़ की राजकुमारी चन्द्रप्रभा, रूपवती की सखी चन्द्रकला, प्रेत-राज, 'जंगली' तथा 'प्रेतात्मा' हैं। इन लोगों के पीछे १० सशस्त्र नकाब-पोश खड़े हुए हैं।

'खून के प्यासे' ने जिस समय कमरे में प्रवेश किया, 'जंगली' तथा 'प्रेतात्मा' को छोड़कर, अन्य सब कैदी थर-थर कांपने लगे। उन्हें अपने जीवन से निराशा हो गई। 'खून का प्यासा' जाकर गद्दी पर बैठ गया। सबसे पहले 'खून के प्यासे' ने चन्द्रकला की ओर दृष्टि उठाई। उन अंगारे जैसी आंखों को देखकर चन्द्रकला की उस करुण-मिश्रित दृष्टि में इतनी वेदना तथा इतना आवेग भरा हुआ था कि जंगली अपने उमड़ते हुए आंसुओं को न रोक सका।

'खून के प्यासे' ने रघुवंश की ओर संकेत कर कहा—रघुवंश ! शीघ्र बताओ कि रूपवती ने मेरे प्रेम को स्वीकार किया या नहीं ?

रघुवंश—गुरुजी ! उस घमंडी स्त्री से क्या आप यह आशा रखते है। उसका प्रेम स्वीकार करना तो दूर रहा, उलटे वह तो आपको

दण्ड देना चाहती है कि आप 'रूपगढ़ी' से जंगबहादुर को उठा लाए।

क्या कहा ? उसने मेरे प्रेम को ठुकरा दिया और मुझे दण्ड देना चाहती है नादान बच्ची ! अब तू 'खून के प्यासे' से बचकर कहां जा सकती है ? हूं !

'खून के प्यासे' ने एक भयंकर हुंकार भरी । एक क्षण चुप रहकर वह पुनः बोला—रघुवंश ! काट लो चन्द्रकला का सिर, ताकि वह भी जान जाए कि 'खून का प्यासा' अपने कहने का कितना महत्व रखता है।

इतना सुनते ही रघुवंश हाथ में नंगी तलवार लेकर चन्द्रकला की ओर चला, परन्तु उसी समय 'खून के प्यासे' ने उसे रोक दिया और कहा—ठहरो । उसको मैं अपने ही हाथों द्वारा मारना चाहता हूं ।

इतना कहकर 'खून का प्यासा' तलवार लेकर चन्द्रकला पर झपटा । एक क्षण के लिए वायुमंडल में विद्युत छटा-सी कोई वस्तु चमकी, साथ ही उस स्त्री के कोमल कंठ की एक भयानक चीत्कार सुन पड़ी और फिर चारों ओर सन्नाटा छा गया ।

थोड़ी देर में 'खून के प्यासे' की क्रोधाग्नि शान्त हो गई । उसने प्रेतात्मा की ओर देखा और हंसकर कहा—प्रेतात्मा ! अपने आत्मीय-जनों के कार्यों में कभी हस्तक्षेप न करना चाहिए—बड़े लोगों का यह कथन असत्य नहीं है । भला ! तुम्हें क्या पड़ी हुई थी जो मेरे विरुद्ध सोनपुर की रक्षा करने उठे थे ! क्या तुम समझते थे कि केवल मुझे कैद करके ही तुम सोनपुर की रक्षा कर सकोगे ? तुम तो महाराज चन्द्रदीपसिंह से सोनपुर की रक्षा करने का वचन दे चुके थे न ? फिर उसे बचाया नहीं ?

प्रेतात्मा—(क्रोध से)—क्या तूने सोनपुर को नष्ट कर डाला ? पापी ! चाण्डाल । यह तूने क्या किया ? अब तो लाखों दीन-दुखिया तड़प-तड़प कर मर जाएंगे, क्योंकि जब खजाना ही न रहा तो महाराज चन्द्रदीपसिंह उन दीनों तथा असहायों की किस प्रकार सहायता करेंगे, जो काम करने पर भी पहनने को वस्त्र न पाते थे, तथा रूखी-सूखी मिलने पर भी एक ही जून भोजन करते थे। शर्म कर पाजी ! अपने इस नीच कार्य पर शर्म कर । मैं अब भी तुम्हें उतना ही प्यार करता हूं, जितना पहले करता था। परन्तु भइया तुम्हारे इन नीच कर्मों से मुझे और (जंगली की ओर संकेत कर) चन्द्रशेखर को तुम्हारे ऊपर इतनी घृणा उत्पन्न हुई कि तुम्हें सन्मार्ग पर लाने के लिए तुमसे शत्रुता करनी पड़ी।

'खून का प्यासा'—(जंगली की ओर देखकर)—क्या ये हमारे

परम प्रिय गुरुभाई चन्द्रशेखर हैं।

प्रेतात्मा—हां।

'खून का प्यासा'—(चन्द्रशेखर से लिपट कर) भाई शेखर! तुम तो हमें एकदम भूल गए। यह तुमने कैसा भयंकर रूप धरा है?

अन्यन्य कैदियों को खड़ा ही छोड़कर प्रेतात्मा, शेखर तथा 'खून का प्यासा' आकर गद्दी पर बैठ गए—कुछ देर के बाद प्रेतात्मा ने 'खून के प्यासे' से कहा—दुर्जय! तुम्हारे इन नीच कर्मों ने तुम्हें जनता की दृष्टि में गिरा दिया है, फिर भी तुम्हारी वीरता का सभी आदर करते हैं। यदि तुम्हारी यही वीरता नीच कार्यों के बदले शुभ कर्मों में लगती, लाखों दीन-दुखियों को नष्ट करने के बदले उनका घर-बार बसाने में खर्च होती, तथा कतिपय राज्यों में क्रान्ति उत्पन्न करने के बदले उनकी सुख-शान्ति की स्थापना में लगती—तो आज सब तुम्हारी श्रद्धा के साथ नाम लेकर आदर करते।

परन्तु इतने पर भी—इतने भयंकर कार्य कर चुकने पर भी—तुम्हारी रक्त-पिपासा शान्त न हुई, तुम्हारा जी न भरा, तुम्हारे नेत्र खुले और तुमने सोनपुर राज्यकोष को भस्म कर ही डाला। और··· (लम्बी सांस लेकर)···और अपने परम-प्रिय गुरुभाई चन्द्रशेखर की लाडली पुत्री चन्द्रकला की जान ले ली।

'खून का प्यासा'—क्या कहा? चन्द्रशेखर की लाडली पुत्री चन्द्रकला···?

प्रेतात्मा—हां! वह शेखर की पुत्री थी दुर्जय। उसके सामने ही तुमने उसकी पुत्री का वध कर डाला, परन्तु उसने उफ तक न की। क्या कोई इतना धैर्यवान होगा कि उसकी प्यारी सन्तान की इस प्रकार मृत्यु हो और वह मुख से कुछ भी न बोले?—परन्तु देखो दुर्जय, शेखर की ओर देखो। उसे यह आशा है कि उसकी पुत्री के बलिदान से तुम्हारे सुधरने में आशातीत सहायता मिलेगी।···दुर्जय! तुमने हम लोगों के साथ जितना बुरा व्यवहार किया है, उसकी गणना नहीं हो सकती। परन्तु इतना सब होने पर भी हमने तुम्हें सन्मार्ग पर लाने के लिए सतत प्रयत्न किया—सोचा कि यदि तुम सुधर जाओगे तो जन-समाज का बहुत उपकार होगा।

चन्द्रशेखर—क्या तुम यह सोच सकते हो कि सदैव तुम इस प्रकार का अत्याचार करते रहोगे। तुम्हारा कोई कुछ भी न कर सकेगा। क्या तुम यह सोचते हो कि सदैव तुम अजेय ही रहोगे। यदि तुम वास्तव में ऐसा समझते हो तो यह तुम्हारी बड़ी भूल है। तुम्हारे यह

यन्त्र, तुम्हारे ये अद्भुत शस्त्र, तुम्हारे ये बलिष्ठ बाहु—चाहे हम लोगों पर भले ही विजय पा जाए परन्तु उस जगदाधार जगदीश्वर पर कभी भी विजय नहीं पा सकते। स्मरण रहे उसके पास तुम्हारे यन्त्रों से भी विचित्र यन्त्र हैं तथा तुम्हारे शस्त्रों से भी अनिष्टकारी शस्त्र हैं। उसके किंचित् भ्रूभंग से ही तुम मसल दिए जा सकते हो।

प्रेतात्मा—जिनको तुमने घरबार लूटकर कंगाल बना दिया, जो दर-दर भीख मांगने पर भी भर पेट भोजन नहीं पाते—उन दीनों की आहें तुम्हें जला डालेंगी। अपने को पहचानो ! तुम क्या थे और क्या हो गए—वह तुम्हारी वीरता संसार का उपकार करना चाहती है परन्तु तुम्हारे कुविचार तुम्हें रोकते हैं। तुम्हारा हृदय असहायों की सहायता करना चाहता है परन्तु तुम्हारी दुष्ट प्रकृति रोकती है।

'खून का प्यासा'—(रोते हुए) भाई प्रेतात्मा ! आज मेरी आंखें खुलीं। आह ! मैंने अपने प्यारे गुरुभाई चन्द्रशेखर की सुपुत्री का वध कर डाला। ऐसा करते हुए मेरे हाथ कट क्यों नहीं गए। अच्छा ! अगर नहीं कटे तो—(रघुवंश से) रघुवंश ! तलवार लेकर आगे बढ़ो और मेरे इन आततायी बाहुओं को शीघ्रातिशीघ्र काट डालो। सोच क्या रहे हो बढ़ो जल्दी !

प्रेतात्मा—यह क्या नादानी करते हो ! दुर्जय ! क्या मेरी शिक्षा का यही निष्कर्ष है। अपने इन क्षणिक आवेग को रोको और चन्द्रशेखर से अपने इस अनुचित कोप के लिए क्षमा मांगते हुए दीन-रक्षा का प्रण करो।

'खून का प्यासा'—(शेखर से)—भाई शेखर ! मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हारे सामने ईश्वर को साक्षी देकर प्रण करता हूं कि आज से कभी भी कोई बुरा कार्य न करूंगा और अपने दीन भ्राताओं की रक्षार्थ सब कुछ न्योछावर कर दूंगा।

चन्द्रशेखर—ओ भगवान ! क्या तूने सचमुच भटके पथिक को उचित मार्ग का दिग्दर्शन कराया ! क्या वस्तुतः तूने एक अन्धे को लकड़ी का सहारा दिया !··· भइया दुर्जय ! मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूं, सच्चे हृदय से क्षमा, आह ! आज मैं धन्य हो गया ? मेरी पुत्री के बलिदान से एक भटका हुआ पथिक रास्ता पा गया।

'खून का प्यासा'—भाइयो ! आज मुझे मालूम हुआ कि तुम लोग साक्षात् देवता हो, तुम्हीं लोगों का कार्य था जो मुझ जैसे दुष्ट को भलाई का पाठ पढ़ाया। इसका मैं आजन्म अभारी रहूंगा। अब मैं संसार को दिखा दूंगा कि किस प्रकार दुष्ट-से-दुष्ट के जीवन में भी आकस्मिक

परिवर्तन होता है। मुझे मालूम पड़ रहा है कि मैं व्यर्थ ही सबसे बैर बांधकर अपनी वीरता दिखाता हुआ अपने सिर पर पाप की गठरी लाद रहा था। अब मेरा दृढ़ निश्चय ही नहीं वरन् भीषण प्रतिज्ञा है कि शीघ्र दुराचारियों का नाश करूंगा। पाखंडियों को पाप का बदला देने के लिए शीघ्र ही मेरी दुधारा चमकेगी।

प्रेतात्मा—हम लोग तुम्हारे ऊपर बहुत ही प्रसन्न हैं दुर्जय ! इन कैदियों ने तो तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है न ! अतः इनके बन्धन खोल दो।

प्रेतात्मा के इतना कहने पर 'खून का प्यासा' उठा और उसने सब कैदियों के बन्धन खोले, उसने अपने अपराध के लिए क्षमा याचना की। पुनः वह राजकुमार जंगबहादुर के पैरों पर गिर पड़ा। कुमार ने उसे उठा कर अपने हृदय से लगा लिया और कहा, दुर्जय ! आज मैं तुम्हारा असली नाम जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं ! और आशा करता हूं कि तुम अपनी यह भयंकर नकाब हटाकर अपनी सूरत भी देखने का हमें अवसर दोगे।

प्रेतात्मा—हां दुर्जय ! मुझे भी तुम्हारी सूरत देखे हुए पांच-छः वर्ष व्यतीत हो गए हैं। इसके अनन्तर तुम्हारे चेहरे पर कितने ही परिवर्तन हुए होंगे, क्योंकि अन्तिम बार जब मैंने तुम्हें देखा था, तब तो तुम निरे बालक ही थे।

इतना कहकर प्रेतात्मा उठा और उसने 'खून के प्यासे' का काला लबादा, हथियार तथा नकाब दूर कर दी। अब तो 'खून के प्यासे' की सूरत एकदम ही बदल गई। आंखें जो नकाब के भीतर से अंगारे की तरह जला करती थीं, अब रसीली मालूम पड़ने लगीं। जिसकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक न थी, परन्तु इतनी अल्प अवस्था से ही उसमें अटूट बल था, तथा उसका नाम दिग्दिगान्तरों में फैल गया था।

काला लबादा, नकाब तथा अपने विचित्र हथियार लगाने पर वह जितना भयंकर लगता था, उतना ही अब सुन्दर मालूम पड़ने लगा। कटीली बड़ी-बड़ी आंखें, उठी हुई नासिका विशाल बाहु, प्रसन्न वक्षस्थल सब इस समय उसकी सुन्दरता को द्विगुण कर रहे थे। उसकी इतनी अल्पावस्था तथा अद्वितीय सुन्दरता को देखकर तथा उसके उन अमानुषिक पराक्रमों का स्मरण कर, सब कैदी आश्चर्यचकित हो गए। किसी ने कभी भी खयाल नहीं किया था कि वह भयंकर ऐयार जिसने भारत के कोने-कोने को अपनी वीरता तथा दुष्टता से भयभीत कर रखा है, इतना सुन्दर होगा।

थोड़ी देर के बाद 'खून के प्यासे' ने कहा—अच्छा ! अब यहां से चलना चाहिए, क्योंकि संध्याकाल सन्निकट ही है। (रघुवंश से) रघुवंश ! राजकुमार जंगबहादुरसिंह के शयनगृह के लिए तो मैं स्वयं ही प्रबन्ध करूंगा। तुम शेष लोगों को ले जाकर हमारे शयनगृह नम्बर चार के बगल वाले कमरे में ठहराओ तथा भोजन आदि का प्रबन्ध कर दो। मैं थोड़ी देर तक राजकुमार जी से कुछ गुप्त परामर्श करने के बाद वहां जाऊंगा।

'खून के प्यासे' की आज्ञानुसार रघुवंश राजकुमार जंगबहादुरसिंह को छोड़ अन्य सब लोगों को साथ लेकर उस कमरे से बाहर हो गया। वहां केवल 'खून का प्यासा' और राजकुमार रह गए।

'खून के प्यासे' ने राजकुमार से कुछ कहने के लिए अपना मुंह खोला ही था कि उसी समय कमरे का दरवाज़ा खुला और उसके शागिर्द प्यारेलाल ने उस कमरे में प्रवेश किया। प्यारेलाल किसी विशेष कार्य से बाहर गया हुआ था और कोई अत्यन्त आवश्यक समाचार लेकर लौटा था। इधर जो कुछ पट परिवर्तन हुआ था, उसका उसे कुछ भी समाचार न मिला था। अतः जब उसने उस कमरे में प्रवेश किया और राजकुमार जंगबहादुरसिंह को स्वतन्त्र तथा 'खून के प्यासे' को अपनी असली सूरत में देखा, तो वह आश्चर्यचकित हो गया। 'खून का प्यासा' उसके हृदय की बात जान गया और उसने उसे प्रेमपूर्वक अपने पास बिठाकर इधर का सब वृत्तान्त कह सुनाया। यहां की घटना का वर्णन सुनकर प्यारेलाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

अन्त में 'खून के प्यासे' ने उससे पूछा—कहो ? क्या समाचार लाए हो !

प्यारेलाल—बड़ा ही भयानक समाचार है। यह देखिए।

कहकर प्यारेलाल ने एक पुरजा 'खून के प्यासे' के हाथ में रख दिया। उसने पुरजे को पढ़ा। पढ़ते ही उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं। उसने प्यारेलाल से पूछा—यह पुरजा तुम्हें कहां मिला।

प्यारेलाल—आज मैं घूमता हुआ एकाएक नन्दन वन के उस भाग में जा पहुंचा, जहां वह पक्का कुआं है जिसमें जंगली रहते हैं। थका हुआ होने के कारण मैं उसी कुएं पर बैठकर विश्राम करने लगा। मुझे इस प्रकार बैठे हुए केवल पन्द्रह ही मिनट व्यतीत हुए थे कि मुझे दो मनुष्यों की आहट मिली जो घोड़ों पर सवार कुएं की ही ओर आ रहे थे। उनको अपनी ओर आता देखकर मैं पास ही की एक झाड़ी में जाकर छिप गया। वे दोनों सवार कुएं के पास आकर घोड़ों से उतर

पड़े और वहां बैठकर निश्चिन्तपूर्वक बातचीत करने लगे। इतना कहकर प्यारेलाल ने उन दोनों सवारों से पुरजा छीनने का सम्पूर्ण विवरण कह सुनाया।

'खून के प्यासे' ने कहा—अच्छा! अब तुम जाओ और कुछ जल-पान करके मेरे साथ चलने के लिए एक घंटे के अन्दर ही तैयार होकर आ जाओ।

प्यारेलाल चला गया। उसके जाने के बाद 'खून के प्यासे' ने वह पुरजा राजकुमार जंगबहादुरसिंह को दिखलाया और कहा—देखिए आपके पिताजी पर तथा आपके राज्य पर किस प्रकार का संकट आना चाहता है।

राजकुमार ने पुरजा लेकर पढ़ा। उसमें यह लिखा हुआ था :

चुनार-अधीश्वर !

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि 'शेर का पंजा' जिसने सात-आठ वर्ष पहले आपके राज्य में भयंकर क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी,और जिसको स्वयं आपने अपने सामने ही प्राणदण्ड दिया था, अभी तक जीवित है और अब 'गुरुघंटाल' के नाम से पुनः इस संसार के अवतरित हुआ है।

जब 'शेर के पंजे' का दौर-दौरा था, तब आपको उसकी ओर से सूचना दी गई थी कि अपनी कन्या कनकलता को शीघ्र ही उसके पास भेज दें अन्यथा चुनार में अनिष्टकारी घटनाओं का कारण स्वयं आप ही बनेंगे।—परन्तु आपने उस सूचना पर जरा भी ध्यान न दिया था और मैंने भी इसका कुछ विशेष ख्याल नहीं किया था, मैं प्राचीन बैर का, जिसका प्रतिशोध लेने के लिए मैंने 'शेर के पंजे' का रूप धरा था—अब अपने इस नये नाम 'गुरुघंटाल' से प्रतिशोध लेना चाहता हूं। मुझे भी देखना है कि आप राजकुमारी को मेरे हाथों से बचाने के लिए क्या-क्या उपाय करते हैं। सावधान! आज ही बारह बजे रात को।

—वही 'गुरुघंटाल'।

पत्र पढ़ते ही राजकुमार का शरीर क्रोध से तमतमा उठा। वे 'खून के प्यासे' से बोले—यह कौन दुष्ट है, जो मेरी बहन को उठा ले जाना चाहता है। मुझे शीघ्र ही राज्य में पहुंचाओ, मैं देखूंगा कि वह दुष्ट किस प्रकार 'कनक' को ले जाता है।

'खून का प्यासा'—आप यह नहीं जानते कि आजकल आपके अनेकों शत्रु उत्पन्न हो गए हैं। अतः आपका यहां से बाहर जाना निरापद नहीं है। आप इस कुटिया को ही अपना राजप्रसाद समझिए। मैं

आपको वचन देता हूं कि चाहे मेरे प्राण भले ही जाएं, परन्तु मैं आपकी बहन को इस दुष्ट के हाथों से अवश्य बचाऊंगा।

राजकुमार—तो तुम्हें मुझे भी अपने साथ रखना पड़ेगा।

'खून का प्यासा'—नहीं राजकुमार आप तो जानते ही हैं कि 'खून का प्यासा' सदैव अकेला ही काम करता है। अतः इस समय अधिक हठ न करें। समय अमूल्य है। रात के आठ बज गए हैं।

इनमें बातें हो रही थीं कि प्यारेलाल काला लबादा पहने हुए तथा मुंह पर नकाब डाले हुए आ पहुंचा। उसे देखकर 'खून के प्यासे' ने राजकुमार से कहा—राजकुमार! आप मेरे शयनगृह में जाकर बिश्राम करें, मैं प्यारेलाल के साथ आपके राज्य की ओर प्रस्थान करता हूं।

राजकुमार तो विश्राम करने के लिए 'खून के प्यासे' के शयनगृह की ओर चले गए। इधर 'खून के प्यासे' ने काला लबादा पहना, छुरों वाली पेटी कमर से बांधी, मशीनों वाला झोला कन्धे से लटकाया तथा मुंह पर वही भयंकर नकाब लगाई। सुन्दरता में अद्वितीय 'दुर्जय' फिर भयंकर 'खून का प्यासा' बन गया। फिर एक मनोहर मूर्ति भयंकर आकृति में बदल गई।

और धीरे-धीरे वह भयंकर आकृति चुनार राज्य की ओर बढ़ चली। उसके पीछे ही एक दूसरी भयंकर काली आकृति और भी थी।

१०

अर्द्धरात्रि का समय है। समग्र चुनार शहर सूना पड़ा हुआ है। राजमहल के प्रहरी भी मीठी नींद में मस्त सो रहे हैं। चारों ओर भयंकर सन्नाटा छाया हुआ है। परन्तु राजमहल के अन्तःपुर वाले भाग में अभी तक लोग जाग रहे हैं। एक सुसज्जित कमरे में बैठे हुए महाराज खंगबहादुरसिंह, राजकुमारी कनकलता, महारानी स्वर्णकान्ता तथा मन्त्री कावस थी, राजकुमार जंगबहादुरसिंह के विषय में वार्तालाप कर रहे हैं। आने वाली विपत्ति का इन लोगों को कुछ भी पता नहीं है।

एक दीर्घ निश्वास लेकर महाराज ने कहा, जंगबहादुर को हम लोगों से बिछुड़े हुए दो मास के ऊपर व्यतीत हो चुके परन्तु उसका कुछ भी पता न लगा। न मालूम वह किस दिशा में होगा।

महारानी—और प्रेतराज तथा रजनीकान्त को भी गए हुए बहुत दिन हो गए, परन्तु उनका भी कोई समाचार न मिला।

मन्त्री—आप लोग धैर्य धरें। राजकुमार को खोजने के लिए हजारों जासूस जा चुके हैं, आशा है कि शीघ्र ही उनका पता लगेगा।

महाराज—मन्त्रीवर! क्या आप बता सकते हैं कि जंगबहादुर को कौन उठा ले गया!

मन्त्री—महाराज 'खून के प्यासे' को छोड़कर और कौन ऐसा दुर्दान्त साहस कर सकता है।

महाराज—मन्त्री जी! 'खून के प्यासे' ने तो 'शेर के पंजे' से भी अधिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

कनकलता—'शेर का पजा' कौन पिता जी।

महाराज—तुम्हें उसकी सुध न होगी बेटी! उस समय तुम बहुत ही छोटी थीं। जिस प्रकार आजकल चारों ओर 'खून के प्यासे' का आतंक छाया हुआ है, उसी प्रकार आज से आठ-नौ वर्ष पहले 'शेर के पंजे' का आतंक छाया हुआ था। अन्त में वह किसी प्रकार प्रेतराज के हाथ पड़ गया और उसने मेरी ही आज्ञा से प्राणदण्ड दे दिया। इस प्रकार उस दुष्ट तथा आततायी 'शेर के पंजे' का अन्त हुआ। अब देखें इस नये शत्रु 'खून के प्यासे' का किस प्रकार अन्त होता है।

महाराज कुछ और कहना चाहते थे कि इतने ही में एक आवाज आई—महाराज! सावधान, शत्रु आपके घर में घुस आए हैं; परन्तु आपको पता भी नहीं। बचाव का प्रबन्ध कीजिए क्योंकि अब की बार बड़े ही बलवान शत्रु से सामना करना है।

इस आवाज ने सबों को चौंका दिया। महाराज ने उस आवाज देने वाले से पूछा—यह अभी-अभी कौन बोला?

आवाज़ आई—नकाबपोश।

महाराज—तुम्हारा नाम।

आवाज़—मैं अभी आपको अपना नाम नहीं बता सकता।

महाराज—तो मैं तुम पर विश्वास किस प्रकार करूं।

आवाज़- विश्वास तो आपको झक मारकर करना ही पड़ेगा, क्योंकि आपके कमरे के सब दरवाजे बाहर से मजबूती के साथ बन्द कर दिए गए हैं।

महाराज—उन्हें किसने बन्द किया।

आवाज़—आपके शत्रु ने।

महाराज—मेरा शत्रु कौन है?

आवाज़—'शेर का पंजा' जिसे अब तक आप मरा हुआ समझ रहे थे।

महाराज—क्या वह अभी तक जीवित है ?

आवाज़—हां ! अब 'गुरुघंटाल' के नाम से पुनः इस संसार में आया है।

महाराज—इस आकस्मिक विपत्ति का तो मुझे कुछ भी पता न था ?

आवाज़—पता भी कैसे रहता। वह पुरजा, जिसे 'गुरुघंटाल' ने आपके पास भेजा था मेरे एक शागिर्द के हाथ पड़ गया इसलिए आपको इस घटना की कुछ भी खबर नहीं।

महाराज—तो तुमने मुझे पहले ही क्यों न सावधान किया !

आवाज़—अपने शागिर्द द्वारा आपके ऊपर आने वाली विपत्ति की सूचना पाकर, आपकी सहायतार्थ दौड़ा ही चला आ रहा हूं। फिर भी शत्रु मुझसे पहले ही पहुंच चुके हैं। खैर, कोई बात नहीं। मैं आपकी रक्षा करूंगा।

महाराज—आखिर तुम हो कौन ?

आवाज़—आपका हितैषी।

इसके बाद आवाज़ बन्द हो गई। यद्यपि महाराज ने और कई प्रश्न किए, परन्तु किसी का भी उत्तर न मिला। महाराज तथा मन्त्री जी तलवार खींचकर खड़े हो गए और कुमारी कनकलता तथा महारानी स्वर्णकान्ता को धीरज देने लगे। कुछ देर तक सन्नाटा रहा, तत्पश्चात् बाहर से एकाएक धमधमाहट की आवाज़ें आने लगीं मानो वहां बहुत से मनुष्य उछल-कूद रहे हों। महाराज आदि को बड़ा ही कौतूहल हो रहा था, क्योंकि सब दरवाज़े बाहर से बन्द होने के कारण वे बाहर की घटना नहीं देख सकते थे।

थोड़ी देर तक तो इसी प्रकार से उछल-कूद होती रही, तत्पश्चात् एकाएक बिजली के कड़कने का-सा शब्द हुआ और साथ ही किसी ने मेघगर्जन-सदृश आवाज़ में कहा—सिपाहियो ! लेना बढ़के ! जाने न पावे। यही है चुनार की रक्षा का दम भरने वाला नकाबपोश। इसके जीवित रहने तक कनकलता हाथ नहीं आ सकती।

इसके उत्तर में एक दूसरी आवाज़ आई—तू क्या मुझे पकड़ेगा। दुष्ट 'गुरुघंटाल' ! याद रख ! इतने सिपाही 'खून के प्यासे' का कुछ भी नहीं कर सकते।

महाराज ने इस आवाज़ को पहचाना, क्योंकि यह नकाबपोश की आवाज़ थी, जिसने पहले चेतावनी दी थी। इसके बाद ही बाहर तलवारें चलने की आवाज़ें आने लगीं। महाराज ने मन्त्री से कहा—मन्त्री

जी, बात क्या है? कुछ समझ में नहीं आ रही है। हमें चेतावनी देने वाला नकाबपोश कौन हो सकता है?

मन्त्री—महाराज ! बातों से तो यही ज्ञात हो रहा है कि यह नकाबपोश 'खून का प्यासा' है।

महाराज—परन्तु 'खून का प्यासा' तो चुनार राज्य का शत्रु है। मेरी समझ में तो यही आ रहा है कि इस प्रकार अचानक आक्रमण करने वाला 'खून का प्यासा' है तथा हमें चेतावनी देने वाला यह नकाबपोश हमारा कोई गुप्त हितैषी है।

मन्त्री—आपका विचार भी ठीक हो सकता है महाराज !

बाहर अभी तक घमासान लड़ाई हो रही थी ! तलवारों की झनझनाहट बराबर बढ़ती जा रही थी। किसी अज्ञात भय की आशंका से महाराज का मन रह-रहकर उद्विग्न हो उठता था।

लगभग पांच मिनट तक यही रहा। इसके बाद एकाएक कमरे का दरवाज़ा झोंके के साथ खुल गया और उसके अन्दर से एक खौफनाक चीख निकली, भय से सबके रोंगटे खड़े हो गए। महाराज तथा मन्त्री के हाथों से तलवारें छूटकर भूमि पर गिर पड़ीं। महारानी स्वर्णकान्ता तथा कुमारी कनकलता चीख मारकर बेहोश हो गईं।

जिस चीज़ को देखकर ये लोग इतना डर गए थे वह था दस फुट ऊंचा भीमकाय बनमानुष। जिसके शरीर पर भारी-भारी बाल थे तथा जिसके बड़े-बड़े दांत जबड़े से बाहर निकले हुए भयंकर हंसी हस रहे थे। कमरे में प्रवेश करते ही उस नरपिशाच ने भयंकर चिघाड़ मारी और अपने मेघगर्जन-सदृश आवाज़ में कहा—खंगबहादुर, देख ! उस प्राचीन वैर की ज्वाला को शान्त करने के लिए 'शेर के पंजे' ने अब यह रूप धारण किया है !

उस भयंकर बनमानुष को मनुष्य की तरह बोलता हुआ देखकर महाराज आदि भय से थर-थर कांपने लगे। उनमें बोलने की भी शक्ति नहीं रह गई। धीरे-धीरे वह नरपिशाच इन्हीं लोगों की ओर बढ़ने लगा। पास आकर उसने भूमि पर बेहोश पड़ी हुई राजकुमारी कनकलता को गोद में उठा लिया और उस कोठरी से बाहर चला गया। महाराज आदि में शक्ति नहीं रह गई थी कि वे कनकलता को बचाने का प्रबन्ध करते।

जब महाराज का चित्त कुछ ठिकाने हुआ, तो वे मन्त्री से बोले—मन्त्री जी ! ईश्वर की इन अनिष्टकारी घटनाओं तथा इन अचानक आक्रमणों को देखकर कौन भय से पागल न हो जाएगा? मैं इन सब

जादू भरे खेलों को देखकर आश्चर्यचकित हो गया हूं, मेरी विचार-धारा एकाग्र नहीं हो रही है। मेरी बुद्धि भी ठिकाने नहीं है।

महाराज तथा मन्त्री में इस प्रकार की बातें हो रही थीं कि एका-एक बाहर से फिर उसी पूर्व परिचित नकाबपोश की आवाज़ सुनाई पड़ी, देखो ! देखो ! यह भयानक 'गुरुघंटाल' कुमारी कनकलता को उठाए लिए जा रहा है। महाराज ! आप खुले हुए दरवाज़े से शीघ्र ही बाहर आइए और राजकुमारी को बचाइए ! हाय ! हाय ! हाय ! आखिर बेचारी कनकलता इस दुष्ट 'गुरुघंटाल' के हाथों में पड़ ही गई। अब मैं राजकुमार जंगबहादुरसिंह को किस प्रकार अपना मुंह दिखाऊंगा। ठहर तो जा दुष्ट ! कहां जाता है। पहले मुझसे तो लड़ ले। 'खून का प्यासा' तेरे इस रूप से डरने वाला नहीं।

अब तक महाराज तथा मन्त्री जी का भय दूर हो चुका था। अतः वे शीघ्र ही हाथ में तलवारें लिए हुए, उस खुले हुए दरवाज़े की राह बाहर निकल आए ! वहां की अवस्था देखकर महाराज सन्न हो गए। उन्होंने देखा कि बाहर घमासान लड़ाई हो रही है। गुरुघंटालके सैकड़ों सिपाही एक नकाबपोश को चारों ओर से घेरे हुए वार पर वार कर रहे हैं। वह नकाबपोश जो कि कद में लम्बा था तथा जिसकी खूनी आंखें नकाब के भीतर से अंगारे की तरह जल रही थीं। एक हाथ से बेहोश कनकलता को संभाले हुए तथा दूसरे हाथ में एक लम्बी तलवार लिए हुए, बड़ी वीरतापूर्वक अपने शत्रुओं का सामना कर रहा था। यद्यपि वह बहुत ही वीर मालूम पड़ता था, उसकी वीरता को, उसकी कमर से लटकते हुए बहुत से छुरे प्रदर्शित कर रहे थे, परन्तु देर तक सैकड़ों शत्रुओं से लड़ते रहने के कारण तथा एक हाथ में बेहोश राज-कुमारी को लिए रहने के कारण, वह थका हुआ-सा जान पड़ता था ? और उसके विपक्षियों की संख्या अभी भी डेढ़ सौ से कम नहीं थी। फिर भी वह हाथ चलाता हुआ जिधर भी निकल जाता था, उधर ही दस-बीस सिर उड़ते हुए दृष्टिगोचर होते थे।

उस नकाबपोश ने महाराज को देखते ही कहा—महाराज ! जरा आप इधर आकर राजकुमारी को संभालें। मैंने बड़ी विकट परिस्थिति से 'गुरुघंटाल' के खूनी पंजों से बचाया है, परन्तु मैं अकेला होने के कारण उसे पकड़ न सका।

महाराज ने नकाबपोश के पास जाकर उसके हाथ से राजकुमारी को ले लिया और एक किनारे खड़े हो गए ! जब उस नकाबपोश का दूसरा हाथ भी खाली हो गया, तो उसने उस हाथ में भी एक तलवार

ले ली और दोनों हाथों से लड़ाई करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि महाराज स्वयं भी बहुत वीर थे तथा शस्त्र विद्या का उन्हें अच्छा ज्ञान था, तथापि इस विचित्र नकाबपोश की लड़ाई को देखकर वे भी आश्चर्यचकित हो गए। थोड़ी ही देर में मैदान साफ हो गया। नकाबपोश के विपक्षियों में से कोई भी न बचा। सब काल के घाट उतर गए। उस नकाबपोश ने महाराज को नतमस्तक होकर प्रणाम किया! महाराज गद्गद् स्वर में बोले—शाबाश! बहादुर शाबाश! आज तक मैंने बहुत-सी लड़ाइयां देखीं, परन्तु तुम्हारे जैसा शस्त्र विद्या में निपुण वीर नहीं देखा। मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूं। तुम्हारा नाम क्या है।

नकाबपोश—महाराज! मेरा नाम आपको यह बताएगा—

इतना कहकर उस नकाबपोश ने अपने झोले में से दो चीजें निकालीं। एक तो कागज का बना हुआ एक छोटा-सा गेंद था तथा दूसरा एक विचित्र प्रकार का डिब्बा। नकाबपोश ने उस गेंद को तो महाराज के हाथ में दे दिया तथा उस डिब्बे को जोर से भूमि पर पटका। एक धड़ाके की आवाज हुई और वह डिब्बा बढ़ने लगा, और पूरा बढ़कर एक गुब्बारे के आकार का हो गया। इसके पहले कि महाराज उस नकाबपोश से गेंद के विषय में कुछ पूछताछ करें वह नकाबपोश उछलकर उस गुब्बारे पर जा बैठा। उसके बैठते ही वह गुब्बारा डगमगाया और सर्र से आकाश की ओर उड़ गया।

महाराज इस घटना को देखकर अभी आश्चर्य ही कर रहे थे कि एकाएक वह गेंद उनके हाथों से छूटकर भूमि पर गिर पड़ा और एक भारी आवाज के साथ फूट गया। उसमें से निकले हुए धुएं के बीच महाराज को एक पुरजा उड़ता हुआ दिखा। उन्होंने उसे उठा लिया और उस पर कुछ लिखा हुआ देखकर पढ़ने लगे—

पूज्य महाराज!

दास ने अब सन्मार्ग ग्रहण कर लिया है। अब उससे किसी प्रकार की बुराई की आशा न रखिए।...मैं हर प्रकार से आपकी सेवा करूंगा।...राजकुमार जगबहादुर मेरे घर पर हैं। उनके लिए आप चिन्तित न हों। वे कुछ दिनों तक अभी मेरे ही पास रहेंगे। उन्हें वहां पर विशेष किसी प्रकार का कष्ट न होगा।...अब आप अत्यन्त सावधानी से रहा करें, विशेष क्या।

आपका—
वही 'खून का प्यासा'

अर्द्धरात्रि का समय है। अंधेरी का अन्धेरा मचा हुआ है। चुनार राज्य के राजमहल में एक सुन्दर चारपाई पर राजकुमारी कनकलता शयन कर रही है। जिस कमरे में राजकुमारी शयन कर रही है, उसमें चार दरवाजे तथा खिड़कियां हैं। दरवाजे इस समय बन्द हैं।

एकाएक कुछ खटके की आवाज सुनकर राजकुमारी की निद्रा भंग हो गई। हकबका कर उठ बैठी और अपने प्रिय भाई राजकुमार जंगबहादुरसिंह को अपने पलंग के पास खड़ा हुआ देख कर आश्चर्य करने लगी।

वह बोली—क्यों भैया ? तुम आ गए ? 'खून के प्यासे' ने तुम्हें छुट्टी दे दी क्या।

जंगबहादुर—कैसी छुट्टी ! उस मक्कार ने तो मुझे कैद किया था ना ?

राजकुमारी—परन्तु बाद को तो यह सुनने में आया था कि 'खून के प्यासे' ने अब सन्मार्ग ग्रहण कर लिया है और वह तुम्हें कुछ दिनों तक अपने ही पास रक्खे रहेगा।

जंगबहादुर—यह सब उसकी मक्कारी है।

राजकुमारी—यह कैसी बातें कर रही हो ? क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि उसने मुझे 'गुरुघंटाल' जैसे भयानक शत्रु से उबारा था।

जंगबहादुर—यह सब मुझे मालूम है। वह भी हरामखोर की एक दगाबाजी ही थी। हां, मैं तुम्हारे लिए एक आवश्यक पत्र लाया हूं।

इतना कहकर जंगबहादुरसिंह ने एक पत्र अपनी जेब से निकाल कर राजकुमारी के हाथों पर रख दिया। राजकुमारी उस पत्र को पढ़ने लगी। उसमें यह लिखा था—

कनकलते !

मैं जानता हूं कि जब से 'खून के प्यासे' ने तुम्हें 'गुरुघंटाल' के हाथ से बचाया है, तुम उसे चाहने लगी हो। परन्तु मैं बताए दे रहा हूं कि तुम 'खून के प्यासे' की प्रणयिनी बनकर कुछ भी आनन्द नहीं प्राप्त कर सकतीं, इस क्षणिक प्रेम को हृदय से निकालकर मेरी आराध्य देवी बनो।

याद रखो ! इन्कार करने पर तुम्हारे राज्य भर की खैर नहीं—तुम्हारे कुटुम्ब भर का सत्यानाश कर तुम्हें प्राप्त करूंगा—और एक नहीं सौ 'खून के प्यासे' भी तुम्हें नहीं बचा सकेंगे।

तुम्हारा—वही 'रसिकरसाल'

पत्र पढ़ते ही राजकुमारी सन्न हो गई। उसने जंगबहादुरसिंह से पूछा—यह पत्र कहां से मिल गया भैया !

जंगबहादुर—इस पत्र का वाहक स्वयं मैं ही हूं।

राजकुमारी—तो क्या तुम 'रसिकरसाल' से परिचित हो !

जंगबहादुर—परिचित क्या, मैं उनका सेवक ही हूं।

जंगबहादुर—भैया आज तुम अवश्य ही पागल हो गए हो, तभी तो ऐसी पागलपने की बातें कर रहे हो।

जंगबहादुर—मैं पागलपने की बातें नहीं कर रहा हूं वरन सचमुच कहता हूं कि मैं तुम्हारा भैया नहीं, 'रसिकरसाल' का ऐयार हूं।

राजकुमारी—अब तो तुम्हारे पागल होने में कोई भी सन्देह नहीं है।

जंगबहादुर—अच्छा, मैं तुम्हें अभी दिखलाए दे रहा हूं कि मैं जंगबहादुरसिंह नहीं—'रसिकरसाल' का ऐयार हूं।

इतना कहकर जंगबहादुरसिंह ने एक रूमाल से अपने मुख पर लगे हुए रोगन को पोंछ लिया और राजकुमारी को अपनी ओर देखने के लिए कहा। राजकुमारी उसकी नवीन सूरत देखते ही सन्न हो गई। उसने देखा कि सचमुच वह कोई ऐयार ही है, जंगबहादुरसिंह नहीं। यह देखकर राजकुमारी की भय से बुरी दशा हो गई परन्तु उसने अपने डर को प्रकट न होने दिया !

कुछ देर के बाद उस ऐयार ने कहा—अच्छा परिचय जान लिया और सूरत भी देख ली अब चलने की तैयारी करो।

राजकुमारी—कहां ?

ऐयार—हमारे मालिक के पास !

राजकुमारी—अपने मालिक से जाकर कह दो कि मैं उसके प्रेम पर लात मारती हूं।

ऐयार—हमारे मालिक की आज्ञा है कि यदि तुम सीधी तरह से मेरे साथ आने को तैयार न हो तो तुम्हें जबरदस्ती ले आऊं। अतएव हठ छोड़कर सीधे-सीधे मेरे साथ चली चलो। नाहक मेरे मालिक की क्रोधाग्नि न भड़काओ नहीं तो प्रलय हो जाएगा, प्रलय।

राजकुमारी—दुष्ट ! कमीने ! बस अब तू सीधे-सीधे यहां से चला जा, नहीं तो मैं पहरेदारों को सावधान करती हूं।

ऐयार—इस समय तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई भी नहीं है। प्रहरी सब काल के घाट उतर गए और 'खून का प्यासा' भी अपने महल में पड़ा हुआ, आराम की नींद सो रहा होगा।

"नहीं—ऐसा नहीं है।" कहीं से यह तीव्र आवाज आई और साथ ही एक हाथ भर लम्बा छुरा सनसनाता हुआ आकर उस ऐयार की पीठ में घुस गया। छुरा लगते ही उसका शरीर एक बार कांपा और वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

उस दुष्ट ऐयार की ऐसी दशा देखकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई और समझ गई कि 'खून का प्यासा' आ पहुंचा। वह जिधर से छुरा आया था, उधर ही को चली। उसे यह विश्वास था कि 'खून के प्यासे' को देखूंगी, परन्तु सारी कोठरी छान डालने पर भी उसे कोई दिखाई न पड़ा।

एकाएक उस कमरे का दरवाजा झोंके के साथ खुल गया और उसके अन्दर से एक नरपिशाच, वही भयानक 'गुरुघंटाल' निकला। उसे देखकर राजकुमारी थर-थर कांपने लगी। अगर वह उस भयानक नरपिशाच को एक बार न देख चुकी होती तो अवश्य ही बेहोश हो जाती। परन्तु वह तो उसे पिछली बार देख चुकी थी, अतएव उसका भय बेहोशी में परिणत नहीं हुआ।

राजकुमारी की ओर देखकर उस भयानक पिशाच ने एक विकट अट्टहास किया और अपने मेघगर्जन सदृश्य आवाज में कहा—आज तू मुझे एकान्त में मिली है। अब तुझे निश्चिन्ततापूर्वक छाती से लगाकर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करूंगा।

धीरे-धीरे 'गुरुघंटाल' राजकुमारी की ओर बढ़ने लगा। उसको अपनी ही ओर आता हुआ देखकर राजकुमारी की चेतना-शक्ति धीरे-धीरे लुप्त होने लगी—परन्तु उसी समय एक तीव्र आवाज आई—"खबरदार"—और पुनः एक लम्बा छुरा सनसनाता हुआ 'गुरुघंटाल' की छाती में घुस गया। छुरा लगते ही उस भयंकर पिशाच ने एक विकट गर्जना की, "फिर यह दुष्ट 'खून का प्यासा' यहां आ पहुंचा। अच्छा! पहले इसी को ठीक करना चाहिए"—इतना कहकर वह लुप्त हो गया।

राजकुमारी समझ गई कि 'खून का प्यासा' यहीं कहीं छिपा हुआ उसकी रक्षा कर रहा है। वह 'खून के प्यासे' को देखने के लिए व्याकुल हो उठी। कुछ देर तक सन्नाटा रहा, तत्पश्चात् पुनः एक छुरा सनसनाता हुआ आकर उसके सामने फर्श पर गिर पड़ा। उसके दस्ते में एक पुरजा बंधा हुआ था। राजकुमारी ने उस पुरजे को छुरे से खोल लिया और पढ़ने लगी। उसमें यह लिखा हुआ था :

राजकुमारी जी!

एक-दो नहीं, सैंकड़ों शत्रु आपकी ताक में राजमहल में घुस आए हैं, परन्तु आपको कुछ भी खबर नहीं। सावधान हो जाइए। किसी बात का डर नहीं है, मैं आपके पास ही में हूं।

आपका—

वही 'खून का प्यासा'

पत्र पढ़कर राजकुमारी ने एक ठंडी आह भरी, और उसे चूमकर हृदय से लगा लिया—उसने 'खून के प्यासे' की बहुत खोज की परन्तु उसका पता न लगा। न मालूम वह कहां छिपा हुआ था। अन्त में हताश होकर वह पलंग पर लेट गई।

'खून का प्यासा'—जिस शत्रु को मैंने धराशायी कर दिया था, वह यहां नहीं दिखाई पड़ रहा है।

राजकुमारी—अभी तो यहीं था। न मालूम कहा चला गया।

'खून का प्यासा'—यह बड़ी बुरी बात हुई। खैर, वह मेरे हाथों से बचकर कहां जा सकता है, परन्तु राजकुमारी जी! अब आप बड़ी ही सावधानी से रहा करें। आपके शत्रुओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है और इधर की इन अनिश्चित घटनाओं को देखकर तो यही जान पड़ता है कि कोई न कोई विपत्ति आप पर या आपके पिता जी पर शीघ्र ही आने वाली है।

राजकुमारी—(उनकी बातों की अनसुनी करके) परन्तु 'खून के प्यासे' तुम बड़े ही विचित्र हो।

'खून का प्यासा'—वह क्या?

राजकुमारी—यही कि तुम्हारा बल, तुम्हारा पराक्रम तथा तुम्हारा हस्त-कौशल अद्भुत है। देखो तुम्हारी आंखें दहकते हुए अंगारे के समान जल रही हैं। उफ! 'खून के प्यासे' तुम बड़े भयानक हो।

'खून का प्यासा'—क्या राजकुमारी जी डर रही हैं? अच्छा लीजिए मैं जाता हूं।

राजकुमारी—नहीं-नहीं 'खून के प्यासे' मैं डर नहीं रही हूं, वरन् तुम्हारी प्रशंसा कर रही हूं। जिसको हृदय प्यार करता है उससे डरना कैसा?

'खून का प्यासा'—राजकुमारी जी! आप यह क्या कह रही हैं भला? मुझ राक्षस से प्रेम करके आप क्या पा सकती हैं?

परन्तु उस समय कमरे के प्रमुख द्वार पर कुछ खटपट का शब्द सुनाई पड़ा।

'खून के प्यासे' ने अपनी तलवार खींच ली। उसी समय कमरे

प्रमुख द्वार झोंके के साथ खुल गया और चुनार अधीश्वर महाराज खंग-बहादुरसिंह साठ-सत्तर सशस्त्र सैनिकों के साथ, नंगी तलवार लिए, धड़धड़ाते हुए उस कमरे में घुस आए। सिपाहियों ने 'खून के प्यासे' को चारों ओर से घेर लिया। उसी समय महाराज ने कड़ककर कहा—अर्द्ध रात्रि के समय, मेरी पुत्री के पास आकर, उसे दुराचार का पाठ पढ़ाने वाले, इस दुष्ट को अभी कैद कर लो, देखो जाने न पाए।

इतना सुनते ही सिपाही 'खून के प्यासे' के ऊपर टूट पड़े। तलवारें चलने लगीं, परन्तु उस रणबांकुरे के आगे किसी की एक भी न चली। थोड़ी ही देर बाद महाराज ने देखा कि उनके सिपाहियों में से एक भी सिपाही जीवित नहीं है। चारों ओर लाशें बिछीं हुई हैं। यह दशा देखकर महाराज आश्चर्यचकित हो गए।

महाराज को इस प्रकार आश्चर्यचकित देखकर 'खून का प्यासा' जोरों से हंस पड़ा। उसी समय उसके पीछे ही एक पटाखे की आवाज़ हुई। पटाखे की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा और पीछे की ओर देखने के लिए घूमा। परन्तु एकाएक वह सन्न हो गया। उसने देखा कि 'गुरु-घंटाल' वही भयंकर बनमानुष, उससे एकदम सटकर खड़ा हुआ अपनी भयंकर छोटी-छोटी आंखों से उसे घूर रहा है!

'खून का प्यासा' अभी सम्भलने भी न पाया था कि 'गुरुघंगाल' ने अपने वज्र सदृश हाथों द्वारा, उसकी छाती पर कसकर एक घूंसा मारा और फिर तुरन्त ही अन्तर्धान हो गया। उस भीमकाय बनमानुष की इस अचानक चोट को 'खून का प्यासा' सहन न कर सका और आह भरकर वहीं भूमि पर गिर पड़ा। उसके मुंह से खून की धारा बह चली और वह बेहोश हो गया।

उसकी यह करुणाजनक अवस्था देखकर राजकुमारी कनकलता, जो वहीं खड़ी हुई विस्मृत नेत्रों से यह हाल देख रही थी, विह्वल हो उठी। वह दौड़कर बेहोश 'खून के प्यासे' से लिपट गई और विलाप करने लगी।

अपने सामने ही, पुत्री को, पराये पुरुष से लिपटकर रोते हुए देख कर महाराज क्रोध से पागल हो उठे, और कठोर आवाज़ से बोले—बेहया! मुझे तुझसे कभी भी यह आशा नहीं थी कि तू मेरे कुल को कलंकित कर देगी। अब तेरा इस संसार से उठ जाना ही अच्छा है।

इतना कहकर महाराज तलवार खींचकर कनकलता की ओर झपटे, परन्तु एकाएक रुक गए और बोले—नहीं-नहीं मैं एक कलंकनी के दूषित रक्त से अपने हाथ नहीं रंग सकता।...तुझे कुत्तों की मौत

मारूंगा।

इतना कहकर महाराज ने एक सीटी निकालकर जोरों से बजाई। सीटी की तेज आवाज गूंज उठी और थोड़ी ही देर में सेनापति पच्चीस-तीस सैनिकों के साथ उस कमरे में आ उपस्थित हुए। महाराज ने उनसे कहा—सेनापति ! 'खून के प्यासे' ने पिछली बार मेरे ऊपर महान् उपकार किया है, परन्तु फिर भी आज इसकी करतूतें देखकर मैं इसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। ले जाओ इस दुष्ट को और बेहोशी की ही अवस्था में मार कर इसका सिर राजप्रासाद के प्रमुख द्वार पर टांग दो।

सेनापति—जो आज्ञा ! महाराज !

महाराज—और उस सामने वाले मैदान में एक बड़ी-सी चिता तैयार कराओ। उसमें क्षत्रिय कुल में कलंक लगाने वाली इस निर्लज्ज को मैं जीवित ही भस्म करना चाहता हूं।

महल के सामने वाले मैदान में एक बड़ी-सी चिता तैयार की गई। महाराज की आज्ञानुसार, दो सिपाहियों ने कनकलता को रस्सियों द्वारा बांधकर चिता पर रखा। अपनी लाडली पुत्री की यह दशा देखकर महारानी स्वर्णकान्ता पछाड़ खाकर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

महारानी का विलाप सुनकर, सबके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। परन्तु महाराज तो उस समय क्रोध से पागल हो रहे थे। उन्होंने चिता में आग लगाने की आज्ञा दे दी। दो सिपाहियों ने आगे बढ़कर चिता में आग लगा दी। चिता धू-धू कर जल उठी। थोड़ी ही देर में उसकी प्रचण्ड शिखाएं आकाश को छूने लगीं !

महाराज पागलों की तरह बड़बड़ा उठे—हा हा ! अब मेरे सिर के कलंक का टीका मिटा दिया। (सेनापति से) 'खून के प्यासे' को भी यहां लाओ और उसे भी चिता में डाल दो।

भला महाराज की आज्ञा की कौन अवहेलना कर सकता था। तुरन्त ही 'खून का प्यासा' लाया गया। वह उस समय बेहोश था। उसे भूमि पर चित्त लिटा दिया गया। महाराज ने पुनः कड़ककर कहा—सेनापति ! देखते क्या हो ! बढ़ो आगे। (क्रोध से) नहीं बढ़ते ! अच्छा मैं स्वयं ही 'खून के प्यासे' का सर तन से अलग करता हूं।

उनकी दशा उस समय ठीक पागलों की सी हो रही थी। तलवार लेकर आगे बढ़े और बेहोश 'खून के प्यासे' के पास आकर खड़े हो गए उन्होंने अपना तलवार वाला हाथ ऊंचा किया। चिता की ओर प्रचण्ड ज्योति में महाराज की दुधारा तीव्र रूप से चमक उठी, परन्तु उसी समय किसी ने, पीछे से अपने वज्र सदृश हाथों द्वारा उनकी कलाई

पकड़ ली और एक कठोर गर्जन सुनाई पड़ा—'खबरदार।'

चिता अभी तक वेग से जल रही थी। उसकी प्रखर ज्वालाएं अन्धकार को और भी गहरा तथा राजप्रसाद की सुन्दरता को और भी आकर्षक बना रही थीं।

१२

घनघोर जंगल के बीच से दो घुड़सवार धीरे-धीरे जा रहे हैं। उसमें एक तो अधेड़ उम्र का अंगरक्षक है, और दूसरा एक सुन्दर राजकुमार। दिन के तीन बजे होंगे, भयानक जंगल भांय-भांय कर रहा है। ग्रीष्म ऋतु होने के कारण भुवन भास्कर की किरणें पृथ्वी पर एकदम सीधी पड़ रही हैं, दोनों सवार पसीने से तर हैं।

कुछ दूर जाकर दोनों सवार रुक गए। पहले सवार ने कहा—अब किधर चलने का विचार है राजकुमार! अब तो इस घनघोर वन में रास्ता ही नहीं सूझता। साथी सब पीछे छूट गए। मालूम नहीं हम लोग भटकते-भटकते कहां आ पहुंचे।

पास ही एक घना बरगद का पेड़ था। राजकुमार और बीरू अपने घोड़ों पर से उतरकर पेड़ के नीचे जा बैठे। दोनों घोड़े एक डाली से बांध दिए गए। ये लोग आराम से लेटे हुए आपस में इधर-उधर की बातें कर रहे थे, इतने ही में कुछ दूर पर किसी घोड़े की टापें सुनाई पड़ीं। देखा एक घुड़सवार तेजी से घोड़ा भगाता इन्हीं की ओर चला आ रहा है। उसके पास एक बड़ी-सी गठरी भी है, जिसे वह अपने आगे रखे हुए है। वह घुड़सवार इन दोनों को देखकर कुछ दूरी पर ही रुक गया और ध्यानपूर्वक इनकी ओर देखने लगा। कुछ देर इसी प्रकार देखते रहने के बाद पास आकर घोड़े से उतर पड़ा और गठरी भी उतारकर धीरे-से भूमि पर रख दी। राजकुमार की दृष्टि उस घुड़सवार पर पड़ी। उनके मुंह से निकला—हैं! प्रीतम तुम?

घुड़सवार—बड़ी दूर से चला आ रहा हूं कुमार! चुनार राज्य से। परन्तु इस भयानक स्थान में आपको देखकर मुझे घोर आश्चर्य हो रहा है।

राजकुमार—क्या कहूं प्रातःकाल ही आखेट को निकला था, परन्तु भटकता-भटकता इधर आ निकला।

घुड़सवार—परन्तु राजकुमार! अब यहां अधिक देर तक ठहरना ठीक नहीं क्योंकि मैंने सुना है कि इधर चुड़ैलें बहुत हैं, जो नवयुवती

का रूप धारण कर नौजवानों को अपने जाल में फंसाया करती हैं।

राजकुमार—तुम भी कहां-वहां की बातों पर विश्वास कर लेते हो प्रीतम ! ऐयारी करते-करते तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ।

इन लोगों में इतनी बातें हो रही थीं कि दक्खिन ओर की झाड़ी में से खड़खड़ाहट की आवाज़ आई। सबने उस ओर देखा। सहसा राजकुमार चिल्ला उठे—जंगली सूअर !

बीरू—राजकुमार ! सावधान ! वह आपकी ओर आ रहा है।

राजकुमार—आने दो, अच्छा शिकार हाथ लगा है।

इतना कहकर राजकुमार ने अपना लम्बा-सा बरछा उठा लिया और डटकर खड़े हो गए। बीरू और प्रीतम उछलकर अपने घोड़ों पर चढ़ गए, परन्तु वीर राजकुमार भूमि ही पर रह उस भयानक सुअर के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। बीरू चिल्ला उठा—राजकुमार जल्द घोड़े पर सवार हो जाइए। परन्तु राजकुमार केवल हंसकर रह गए। इतने में वह सुअर भी निकट आ गया और प्रबल वेग से राजकुमार पर टूट पड़ा। राजकुमार का बरछे वाला हाथ पीछे गया, पुनः विद्युत वेग से आगे को लपका और बरछे का वह समूचा फल उस दुर्दान्त सूअर की छाती में गड़ गया। एक भयानक घुरघुराहट की आवाज़ के साथ वह जंगली सूअर जमीन पर लेट गया।

राजकुमार और भयंकर सूअर की लड़ाई, और एक व्यक्ति पास ही के पेड़ के पीछे छिपा हुआ देख रहा था ? वह एक युवती थी जो चुस्त शिकारी पोशाक पहने हुए थी और हाथ में एक लम्बी-सी बरछी थी। उसका घोड़ा जिस पर वह इस समय सवार थी सुनहरे रंग का था परन्तु उल्लेखनीय बात तो उसकी अद्वितीय सुन्दरता थी। वह युवती हाथ में बरछी सम्भाले हुए तथा घोड़े पर चढ़ी हुई, एकाग्रचित से राजकुमार तथा सूअर का युद्ध देख रही थी। उसने देखा राजकुमार के बरछे की चोट खाकर सूअर सुन्न होकर जमीन पर गिर गया। यह देखकर राजकुमार हर्ष से उछल पड़े और उसके पास जाकर इसे देखने लगे। इतने ही में सूअर एक भयंकर घुरघुराहट की आवाज़ करता हुआ पुनः उठ खड़ा हुआ और राजकुमार की ओर तेज़ी से झपटा। उसी समय राजकुमार का हाथ कांप गया और बरछा उनके हाथों से छूटकर गिर पड़ा। बड़ी ही विकट परिस्थिति आ उपस्थित हुई। राजकुमार के प्राण संकट में फंसे हुए थे। उनकी रक्षा करना कदापि संभव नहीं था। उनके साथी प्रीतम और बीरू भी किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े थे।

युवती ने राजकुमार पर आपत्ति आई हुई जानकर बरछी वाला

हाथ ऊपर उठाया और तेजी से बरछी सूअर की ओर फेंक दी। बरछी भर्राती हुई जाकर सूअर के कलेजे में बैठ गई। उसके मुंह से एक भयानक घुरघुराहट निकली और वह निर्जीव होकर जमीन पर गिर पड़ा।

राजकुमार उठ खड़े हुए और अपने बचाने वाले को खोजने लगे परन्तु उन्हें कोई न दीख पड़ा—सिवा वीरू और प्रीतम के। इतने में ही वह युवती अपने छिपने की जगह से बाहर आ गई और घोड़े पर से उतरकर राजकुमार के सामने आ खड़ी हुई! बोली—इतनी बड़ी गलती करते हो! भला सूअर का शिकार कहीं पैदल किया जाता है?

राजकुमार—तुम कौन हो?

युवती—तुम्हारी रक्षा करने वाली।

राजकुमार—तुम्हारा परिचय?

युवती अभी कुछ कहने भी न पाई थी कि इतने में ही प्रीतम बोल उठा—राजकुमार! सावधान! मैंने कहा था न कि इस 'जंगल' में चुड़ैल नवयुवतियों का रूप धारण कर नौजवानों को धोखा दिया करती हैं। देखिए! इसका रूप! यह रूप मानवी नहीं है।

युवती ने उस ओर एक क्रोधभरी दृष्टि से देखा, फिर कुमार से बोली—राजकुमार! मेरा परिचय जानकर क्या करोगे? अपना परिचय दो।

राजकुमार—मैं तो प्रेमनगर का राजकुमार वीरभद्र हूं।

युवती—राजकुमार! मुझे तुमसे कुछ गुप्त बातें करनी हैं। थोड़ी देर के लिए मेरे साथ झाड़ी में बैठकर कुछ परामर्श कर सकते हो।

इस समय तक राजकुमार वीरभद्र पर उस युवती के रूप ने अपना पूरा असर कर लिया था, अतः वे उसके साथ चलने को तैयार हो गए। राजकुमार को जाते देखकर प्रीतम ने चिल्लाकर कहा—राजकुमार मेरी बात मानिए। याद रखिए! यह जंगल चुड़ैलों और भूतों का निवास-स्थान है।

परन्तु राजकुमार ने उसकी एक न सुनी। वे युवती के साथ उस झाड़ी में चले गए। झाड़ी के भीतर एक बड़ी-सी चट्टान थी। राजकुमार उसी चट्टान पर बैठ गए। युवती भी आकर उन्हीं की बगल में उनसे एकदम सटकर बैठ गई। राजकुमार के शरीर में एक विचित्र सनसनाहट हुई। एक सुन्दर को अपनी बगल में अपने से एकदम सटकर बैठी हुई पाकर कौन अपने को सम्हाल सकेगा? राजकुमार भी अपनी ज्ञान-शक्ति खो बैठे। एक क्षण के लिए दोनों के नेत्र आपस में मिले। युवती ने लज्जा से अपनी आंखें नीची कर लीं।

युवती ने धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाया और उसे राजकुमार की नाक के पास ले गई। राजकुमार की नाक में एक तीव्र गंध-सी मालूम हुई और वे बेहोश होकर गिर पड़े। युवती ने बेहोश राजकुमार को उठाकर अपने घोड़े पर लाद लिया और आप भी उछल कर उस पर चढ़ बैठी। ऐड़ लगाते ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

१३

जिस समय की हम कहानी लिख रहे हैं, उस समय दक्खिन में प्रेमनगर नाम का एक समृद्धिशाली राज्य था। वहां की प्रजा धन-धान्य से परिपूर्ण थी। ऊंची-ऊंची महल अटारियां, सुशोभित उद्यान तथा प्रशस्त सड़कें देखकर यहां के अतुलित वैभव का सहज ही में ज्ञान हो जाता था। दुख का नाम न था। चारों ओर विलास, वैभव तथा विनयशीलता ही दृष्टिगोचर होते थे।

प्रेमनगर पर उस समय महाराज रसिकरसालसिंह राज्य करते थे। जैसे उनका नाम था, वैसे ही वे रसिक भी थे और रसाल भी, परन्तु उसकी यह रसिकता चरमसीमा तक पहुंच गई थी। वे दिन-रात 'सुरा' तथा 'सुन्दरियों' की उपासना में लगे रहते थे।

राज्य का सारा काम प्रधान मंत्री देखा करते थे। वे वृद्ध थे और विद्वान भी। उन्हीं के अध्यवसाय का फल था कि विलासी महाराज के रहते हुए भी प्रजा सन्तुष्ट थी। उनकी पटरानी से केवल एक लड़का पैदा हुआ था। वह अपने पिता की तरह दुराचारी तो नहीं था, फिर भी पिता की कुछ बुराइयां उसमें अवश्य आ गई थीं। महाराज रसिक-रसाल का एक ऐयर भी था जिसका नाम था प्रीतम।

एक बड़ा-सा कमरा है, जिसकी सजावट अत्यन्त मनोहारी है। एक गद्देदार पलंग पर लेटे हुए महाराज रसिकरसाल अम्बरी तम्बाकू का कश खींच रहे हैं। कमरे में कई दासियां भी उपस्थित हैं, परन्तु ये दासियां वास्तव में दासियां नहीं बल्कि सम्भ्रान्त कुल की नवयुवती लड़कियां हैं जो बहकाकर लाई गई हैं और महल में वासनामय घृणित जीवन व्यतीत कर रही हैं।

तम्बाकू की एक लम्बी कश खींचकर महाराज ने उन युवतियों की ओर देखा और सबको चले जाने का संकेत किया और सोने का उपक्रम करने लगे।

महाराज को कुछ झपकी-सी आने लगी थी कि दरवाजे पर कुछ

खटका हुआ। उनकी नींद टूट गई। उन्होंने सिर उठाकर देखा एक आदमी दरवाजे के पास खड़ा था। महाराज ने कहा—आओ प्रीतम! कहो क्या समाचार है?

आने वाला महाराज का ऐयार प्रीतम ही था। वह धीरे-धीरे भीतर आया और बोला—महाराज समाचार तो बहुत अच्छा है। यह तस्वीर ज़रा देखिए—इतना कहकर प्रीतम ने एक तस्वीर महाराज के हाथों में रख दी। वह तस्वीर एक सुन्दर युवती की थी।

महाराज ने पूछा—यह तस्वीर किसकी है प्रीतम?

प्रीतम—यह कनकलता है महाराज! चुनार के महाराज खंग-बहादुरसिंह की पुत्री राजकुमारी कनकलता।

महाराज—अच्छा तो इसके पाने का क्या उपाय है! क्या मैं महाराज खंगबहादुरसिंह को लिख दूं कि अपनी पुत्री की शादी मेरे साथ कर दें अन्यथा मैं उनपर चढ़ाई कर दूंगा।

प्रीतम—नहीं महाराज! ऐसा कभी न कीजिए। पहले आप एक पत्र मुझे कनकलता के नाम लिखकर दीजिए। मैं उसे गुप्त रीति से ले जाकर कनकलता को दिखलाऊंगा और आपकी प्रशंसा करूंगा। जब वह आपको चाहने लगेगी, तो उसे चुपके से फुसलाकर आपके पास पहुंचा दूंगा। बस! न सांप मरेगा और लाठी भी न टूटेगी। इस तस्वीर में जंगबहादुर की भी तसवीर है। मैं चाहता हूं कि इसी तस-वीर को देखकर अपना रूप कुमार जंगबहादुर जैसा ही बना लूं और तब कनकलता के पास जाऊं, बड़ी दिल्लगी होगी।

महाराज—जैसी तुम्हारी इच्छा!

प्रीतम ने झोले से एक रोगन निकालकर और वह तसवीर सामने रखकर अपनी सूरत एकदम कुमार जंगबहादुरसिंह जैसी बना ली और फिर चुनार की ओर रवाना हो गया। जिस प्रकार जंगबहादुर के रूप में जाकर उसने कनकलता को रसिकरसाल का पत्र दिया और अपना असली रूप प्रकट कर दिया तथा किस प्रकार 'खून के प्यासे' का छुरा लगने से कांप कर मूर्छित हो गया। यह हम ग्यारहवें परिच्छेद में विस्तारपूर्वक लिख आए हैं।

१४

चुनार के महाराज खंगबहादुरसिंह में चाहे कितने भी गुण हों, परन्तु एक अवगुण उनमें बहुत ही भारी था। वह यह कि जब वे क्रोधित

हो उठते थे तब अपने-आपको भी भूल जाते थे। क्रोधावेश में पागल से हो उठते थे। अपने इस अनिष्टकारी अवगुण तथा दुर्दमनीय क्रोध के वश होकर उन्होंने कई ऐसे घृणित कार्य कर डाले थे जो पैशाचिक कहे जा सकते थे। इस क्रोधी आदत के ही कारण जब उन्होंने 'खून के प्यासे' को अपनी पुत्री कनकलता के कमरे में देखा तो वे क्रोध से पागल हो उठे। इस घटना पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना तो दूर रहा, वे क्रोध में अपने आप तक को भूल गए और अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री को भी, अग्नि कुण्ड में जला डालने की आज्ञा दे दी। 'खून के प्यासे' पर तो वे और भी ज र थे, अतः उसे अपने हाथों से ही मारने का उपक्रम किया।

जब महाराज खगबहादुर ने 'खून के प्यासे' को मारने के लिए अपनी तलवार उठाई उसी समय किसी ने बलपूर्वक उनका हाथ पकड़ लिया और एक जोरों की आवाज सुनाई पड़ी "खबरदार" महाराज अपने काम में विघ्न पड़ते देखकर अत्यन्त क्रोधित हो उठे परन्तु ज्योंही उन्होंने घूमकर उस व्यक्ति को देखा, तो सन्न हो गए। उन्होंने देखा कि वही भयानक नर-पिशाच—वही दुर्दान्त 'गुरुघंटाल' अपने वज्र सदृश्य हाथों द्वारा उसकी कलाई पकड़े हुए खड़ा है। उसकी आंखों में भयंकर ज्वाला निकल रही है, मानो महाराज को शीघ्र ही भस्म कर देना चाहती हो। उसके भयानक बड़े-बड़े दांत उस समय जबड़े से बाहर निकले हुए भयंकर हंसी हंस रहे हैं।

उस भयानक 'गुरुघंटाल' को देखकर महाराज का क्रोध तथा पागलपन दूर हो गया। वे डर से थर-थर कांपने लगे। तीव्र दुधारी उनके हाथों से छूटकर भूमि पर गिर पड़ी। उनकी भयभीत आंखें अपनी सहायता के लिए इधर-उधर घूमने लगीं। 'गुरुघंटाल' ने उनका हाथ छोड़ दिया और पास ही बेहोश पड़े हुए 'खून के प्यासे' को उठा कर अपनी पीठ पर लाद लिया, और गरजकर बोला—खगबहादुर! क्रोध में आकर मनुष्य क्या-क्या पैशाचिक कार्य कर सकता है, इस बात का तू प्रत्यक्ष प्रमाण है। आवेग में आकर तूने आज अपनी पुत्री को तो चिता में भस्म कर दिया था, अब मेरे महान शत्रु 'खून के प्यासे' पर हाथ साफ करना चाहता था···तू जानता है? मैं भूत-प्रेत, पिशाच-नरभक्षी तथा बैताल सभी कुछ हूं, फिर भी न्याय की अविरल धारा मेरे हृदय में प्रवाहित हो रही है। मैं अन्याय होते नहीं देख सकता। एक बेहोश व्यक्ति पर हाथ उठाना तुम जैसे कायरों का ही कार्य है, मेरा नहीं। मैं तो अपने शत्रु को विपत्ति में पड़ा हुआ देखकर उसकी सहायता करना अपना धर्म समझता हूं।

इतना कहकर 'गुरुघंटाल' भयानक रूप से हंस पड़ा। महाराज की बुरी दशा हो रही थी। वे मंत्री तथा सेनापति आदि से कुछ कहना चाहते थे परन्तु उनके मुंह से आवाज ही न निकलती थी। मन्त्री आदि भी थर-थर कांप रहे थे। 'गुरुघंटाल' सबों की दशा देख रहा था। वह एक बार पुनः भयावनी हंसी हंसा, फिर कड़कती आवाज में बोला—खंग-बहादुर! मेरी एक बात सुन। मैं तेरे भले के लिए कह रहा हूं कि तू अपने क्रोधी हृदय पर नियन्त्रण करना सीख। आज से केवल दस वर्ष पहले इस राज्य का मंत्री कौन था? शायद याद न हो तो मुझसे सुन। उस समय राज्य का मन्त्री था विजयसिंह और क्या तुझे अपनी बड़ी रानी हेमा की भी याद है, जिसे तूने क्रोध में आकर निर्दयतापूर्वक तेल के कड़ाहे में जला डाला था। वही विजयसिंह वही 'शेर का पंजा' और वही 'गुरुघंटाल' हा हा।

सहसा महाराज जोरों से चिल्लाए—ओह, चुप रह जादूगर शैतान! यह सब बातें तू कैसे जान गया।

'गुरुघण्टाल' बोला—खंगबहादुर, शैतान मैं नहीं, तू है। तेरी रग-रग में शैतानियत भरी है। खैर इस समय मैं जा रहा हूं, परन्तु शीघ्र ही उपस्थित होऊंगा। याद रख! वह प्रतिशोध की ज्वाला कभी शान्त नहीं हो सकती।

इतना कहकर 'गुरुघंटाल' 'खून के प्यासे' को लादे हुए आगे बढ़ा। इतने में ही महाराज में न जाने कहां का बल आ गया कि लपककर अपनी तलवार उठा ली, और गुरुघंटाल' पर तलवार का भरपूर हाथ मारा। इसी समय एक धड़ाके की आवाज हुई। जहां 'गुरुघंटाल' खड़ा था, वहां बहुत-सा धुआं पैदा हो गया। महाराज की तलवार धुएं को बेधती हुई तेजी से नीचे गिरी। धुएं में एक विचित्र चमक निकली और महाराज को एक कड़ा झटका लगा। वे मुंह के बल गिर पड़े परन्तु दूसरे क्षण ज्यों ही उठे तो देखा कि 'गुरुघंटाल' 'खून के प्यासे' को लेकर गायब हो गया था।

० ० ०

काले रंग से पुती हुई दीवालों से वह कमरा बड़ा ही भयावना लग रहा था। गाढ़े नीले रंग की मध्यम रोशनी हो रही थी जिससे वहां के वायुमंडल में एक प्रकार का विचित्र कंपन हो रहा था। एक लोहे की कुर्सी पर 'खून का प्यासा' चैतन्य अवस्था में बैठा था। कुर्सी में कुछ विचित्र प्रकार के पेंच पुर्जे लगे हुए थे और उनमें से कुछ तार निकलकर पास ही की एक दूसरी कुर्सी तक गए हुए थे। उस दूसरी कुर्सी पर वही

भयानक गुरुघंटाल बैठा हुआ था। इन दोनों के अतिरिक्त उस कमरे में कोई नहीं था।

गुरुघंटाल अपनी भयानक आवाज में खून के प्यासे से कहने लगा—'खून के प्यासे' ! मैंने ही तुम्हें खंगबहादुर के हाथों से उबार कर जीवन दान किया है !

'खून का प्यासा'—तुमने मुझे क्यों बचाया है ? मेरे कट्टर शत्रु होकर भी मुझ पर अहसान जमाने के लिए, तुमने क्यों मेरी रक्षा की ?

'गुरुघंटाल'—हा हा ! 'खून के प्यासे' मैंने तुम्हें क्यों बचाया ? सुनो ! ईश्वर ने मुझे एक विचित्र ही प्रकृति-प्रदान की है। मैं अपने शत्रु को स्वयं चाहे जितना भी दुख दूं, परन्तु दूसरे से दुख दिया जाना कभी पसन्द नहीं करता। तुम मेरे शत्रु हो—कट्टर शत्रु। परन्तु तुम पर वह पाजी महाराज हाथ साफ करना चाहता था ! मैंने इसे देखा और तुम्हें बचाया, ताकि तुम केवल मेरे ही हाथों द्वारा मारे जाओ परन्तु इससे तुम यह न समझना कि मैं तुम्हें यहां मार कर डालने के लिए लाया हूं ! नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं हूं। मैं अपने घर आए हुए शत्रु के साथ मित्र का वरताव करता हूं। यदि मैं तुम्हें यहां लाकर मार ही डालना चाहता, तो तुम्हें बेहोशी की ही अवस्था में मार सकता था—परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया क्योंकि मैं तुमसे दो-चार बातें कहना चाहता था ! मैं चाहता हूं कि तुम मुझसे शत्रुता करना छोड़ दो। मुझसे तुमको शत्रुता होने का कोई कारण नहीं है, सिवा इसके कि मैं महाराज खंगबहादुर को दुख देना चाहता हूं और तुम उनकी रक्षा करना चाहते हो।

'खून का प्यासा'—मैंने सन्मार्ग ग्रहण कर लिया है, अतः मैं अत्याचार का दमन करने को सदैव तैयार रहूंगा। यद्यपि महाराज खंगबहादुर ने मेरे साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया है, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि तुम व्यर्थ ही महाराज खंगबहादुर को परेशान करो।

'गुरुघंटाल'—व्यर्थ ही परेशान करूं ? नादान ! तुम नहीं जानते कि उसने मुझ पर क्या-क्या अत्याचार किया था तथा क्रोध में उसने मुझ पर कैसा वज्रपात कर डाला था। तुम विश्वास रक्खो मैं उसे व्यर्थ ही परेशान नहीं कर रहा हूं। मुझे शक है कि मैं उसके दुराचार की लीला इस समय नहीं सुना सकता अन्यथा उसे सुनकर तुम भी मेरा ही साथ देते। एक दर्दनाक कहानी है। मैं और कुछ भी नहीं चाहता। मैं केवल यही चाहता हूं कि तुम मेरे और खंगबहादुर के बीच में न पड़ो।

'खून का प्यासा'—मैं सदैव तुम्हारे मार्ग मे रोड़े अटकाऊंगा, जब तक कि मुझे यह न मालूम हो जाए कि तुम महाराज से किस बात का

'गुरुघंटाल'—यह बात तुम कभी नहीं सुन सकते।

'खून का प्यासा'—तो मैं तुमसे शत्रुता करना नहीं छोड़ सकता।

'गुरुघंटाल'—व्यर्थ की जिद न बांधो। खैर! यदि तुम मुझसे शत्रुता ही करना चाहते हो तो करो। आज से तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु हो, क्योंकि बिना तुम्हें अपने मार्ग से हटाए, मेरा कार्य कभी पूर्ण नहीं हो सकता। अब मेरे से सावधान रहना। इस समय तुम मेरे घर में हो, मेरे अधीन हो, फिर भी मैं न्याय के नाते तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं करूंगा। तुम्हें सकुशल जाने दूंगा परन्तु अन्तिम बार मेरा यही कहना है कि मुझसे शत्रुता करके तुम सुख से नहीं रह सकोगे। चलते समय मैं तुमसे कहे देता हूं कि महाराज खंगबहादुर ने कनकलता को चिता में भस्म कर डाला क्योंकि वे यह नहीं चाहते कि वह तुम जैसे अपरिचित डाकू के साथ प्रेम करे।

'खून का प्यासा' जिसे अभी तक यह घटना नहीं मालूम थी, यह बात सुनते ही चौंक पड़ा और बदहवास होकर बोला—क्या‥‥क्या‥‥ कनकलता? परन्तु उसने शीघ्र ही अपनी बदहवासी को दूर किया क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसका महान शत्रु उसकी कमजोरी जान जाए। अतः वह अपना जी कड़ा करके बोला—तुम इस बात को सुनकर यह आशा न करना कि मैं तुम्हारे मार्ग में रोड़े अटकाना छोड़ दूंगा। तुम मेरे रहते हुए महाराज खंगबहादुर पर कभी हाथ नहीं उठा सकते।

'गुरुघंटाल' बोला—अच्छा अब तुम कुर्सी पर सावधानी से बैठ जाओ, हिलना-डुलना मत।

इतना कहकर 'गुरुघंटाल' ने अपनी कुर्सी में लगे हुए किसी यन्त्र को उमेठा। सर्र-सर्र की आवाज होने लगी—साथ ही 'खून के प्यासे' के शरीर में एक विचित्र प्रकार का कंपन हुआ और थोड़ी ही देर में वह बेहोश हो गया। उसके बेहोश हो जाने पर 'गुरुघंटाल' ने जोरों से पुकारा—रज्जन! रज्जन! इसे जंगल में छोड़ आओ। ताकि होश में आने पर अपने घर चला जाए।

रज्जन ने शीघ्र ही उसकी आज्ञा का पालन किया। रज्जन के जाने के बाद 'गुरुघण्टाल' अपने आप ही बोला—यह बदमाश 'खून का प्यासा' ही मेरे मार्ग का कंटक है खैर देखूंगा कहां जाता है।

इतना कहकर वह कुर्सी पर उठकर बैठ गया। एक गड़गड़ाहट की आवाज हुई और दूसरे ही क्षण वह कुर्सी, जिस पर वह बैठा था, खाली हो गई।

१५

रात्रि के दस बज गए हैं। अन्धकार खूब गाढ़ा हो चला है। जीव-जन्तु, पशु-पक्षी सब आराम की नींद सो रहे हैं। प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल भी अपने विलास-गृह में प्रगाढ़ निद्रा में मग्न हैं। कमरे के सभी दरवाजे भीतर से बन्द हैं। दीवाल में एक जगह एक बड़ा-सा घण्टा टंगा हुआ है।

एकाएक दीवाल में टंगा हुआ घण्टा हिला और जोरों की आवाज हुई। घण्टे की आवाज़ सुनकर महाराज की नींद टूट गई। वे उठ बैठे। घण्टे की आवाज अभी तक कमरे में गूंज रही थी तभी द्वारपाल ने कमरे में प्रवेश किया।

महाराज ने पूछा—क्या है ?

द्वारपाल बोला—महाराज ! राजकुमार वीरभद्र प्रातःकाल ही आखेट को गए थे परन्तु अभी तक लौटकर नहीं आए।

महाराज—क्या वह अभी तक नहीं आया ? तो वह गया कहां ?

द्वारपाल—और महाराज ! ऐयारी प्रीतम दरवाजे पर हैं, मिलना चाहते हैं। मैंने उन्हें कहा भी था कि प्रातःकाल मिल लीजिएगा। परन्तु उन्होंने कहा कि कार्य अत्यन्त आवश्यक है।

महाराज—अच्छा उसे भेज दो।

द्वारपाल सिर झुकाकर चला गया। थोड़ी ही देर में महाराज के ऐयारी प्रीतम ने उस कमरे में प्रवेश किया। वह हांफ रहा था। उसके माथे से पसीने की बूंदें चू रही थीं। महाराज ने कहा—क्या बात है प्रीतम ! तुम इतने परेशान क्यों दीख पड़ रहे हो ?

प्रीतम—क्या कहूं महाराज ! ऐसी विचित्र घटनाएं मैंने अपने जीवन में कभी नही देखीं। उफ ! घटना पर घटना। सोचते ही कलेजा कांप उठता है।

महाराज—कुछ कहो भी तो।

प्रीतम—सब कहता हूं महाराज ! सुनिए ! मैंने अपना रूप कुमार जंगबहादुर की तरह बनाया और गुप्त रीति से राजकुमारी कनकलता के शयनागार में जा पहुंचा। वह मुझे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई क्योंकि उसने मुझे अपना भाई जंगबहादुर समझा। बाद में मैंने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और आपका पत्र भी दिया। पढ़ते ही वह आग-बबूला हो गई। अतः मैं उसे बेहोश करके उठा लाने का विचार करने लगा। परन्तु इतने में ही एक छुरा सनसनाता हुआ आकर मेरी पीठ

पीठ में घुस गया। मेरे शरीर में एक झनझनाहट हुई और मैं धीरे-धीरे बेहोश होने लगा। कुछ देर बाद बेहोशी दूर होने पर मैं उठ बैठा और अपने चारों ओर देखने लगा। राजकुमारी कनकलता दीवाल में बने हुए छेद के पास खड़ी होकर ध्यानपूर्वक उस छेद में से दूसरी ओर कुछ देख रही थी ! उधर से ही तलवारों की झनझनाहट की आवाज़ आ रही थी। मैंने समझा शायद उधर घोर लड़ाई हो रही है। और राजकुमारी उसी छेद द्वारा लड़ाई का दृश्य देख रही है। यह मेरे लिए अच्छा अवसर था। मैं उठ खड़ा हुआ और पास ही एक जगह छिपकर देखने लगा। मैंने देखा कि राजकुमारी थोड़ी ही देर में उस छेद के सामने हट गई और तलवार की झनझनाहट भी बन्द हो गई। इसी समय कमरे का द्वार खुला और 'खून का प्यासा' भीतर प्रविष्ट हुआ। राजकुमारी ने उसे बैठाया और अपने पलंग पर बैठ गई। इतने में महाराज खगबहादुर सिंह अपने सिपाहियों के साथ आ पहुंचे और उन्होंने 'खून के प्यासे' को कैद करने का हुक्म दिया। लड़ाई हो पड़ी और क्षण-भर में ही उस रणबांकुरे ने मैदान खाली कर दिया, परन्तु इसी समय एक धमाके की आवाज़ हुई और 'खून के प्यासे' के पीछे ही एक महाभयानक बनमानुष उत्पन्न हो गया। उस बनमानुष ने 'खून के प्यासे' की नाक पर कसकर घूंसा मारा और अदृश्य हो गया। 'खून का प्यासा' बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा। उसे बेहोश देखकर राजकुमारी कनकलता उससे लिपटकर रोने लगी। अब तो महाराज और क्रोधित हो गए। उन्होंने सामने वाले मैदान में चिता तैयार करने की आज्ञा दी। चिता तैयार हो गई। मैं भी अपने छिपने की जगह से निकलकर उसी मैदान के एक घने पेड़ पर चढ़ गया और देखने लगा। राजकुमारी कनकलता महाराज की आज्ञा से चिता में झोंक दी गई। चिता की लपटें आकाश को छूने लगीं।

इसी समय मुझे मालूम हुआ कि पेड़ के नीचे कोई काली-सी परछाईं खड़ी है। मैंने आंख गड़ाकर देखा तो क्या देखता हूं कि वही भयानक बनमानुष जिसने 'खून के प्यासे' की इतनी दुर्गति की थी पेड़ के नीचे खड़ा हुआ इधर-उधर न जाने क्या देख रहा है। मैंने देखा—वही दुर्दान्त बनमानुष जलती हुई इस प्रचण्ड चिता के बीच कनकलता को लिए हुए अग्नि की वेदी पर खड़ा था। उसके चारों ओर लाल लपटों का भयंकर ताण्डव हो रहा था। मैं सांस रोककर इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि देखें यह बनमानुष राजकुमारी को लेकर सकुशल चिता से लौट आता है या स्वयं भी उसके साथ जलकर भस्म हो जाता है। इतने में ही देखता हूं कि वही बनमानुष पुनः पेड़ के नीचे खड़ा है—

बेहोश राजकुमारी को गोद में लिए हुए। उसने राजकुमारी को धीरे-से जमीन पर लिटा दिया और पुनः न जाने किधर चला गया। मैं लगभग आधे घण्टे तक उसके आने की राह देखता रहा परन्तु जब वह नहीं आया तो मैं सतर्कतापूर्वक पेड़ के नीचे उतरा और राजकुमारी के पास गया। देखा—उसकी त्वचा जगह-जगह से झुलस गई थी, परन्तु कोई घातक घाव नहीं था। मैंने कमर से चादर खोलकर उसमें राजकुमारी को बांध लिया और उसे घोड़े पर रखकर भाग चला। कुछ दूर पर मैंने एक घना बरगद का पेड़ देखा। मैं उसी ओर बढ़ा। जब मैं उस बरगद से थोड़ी ही दूर रह गया तो मैंने देखा कि उस पेड़ के नीचे दो आदमी और उपस्थित हैं और पास दो जीन कसे घोड़े भी घूम रहे हैं। मैं ध्यानपूर्वक उन आदमियों की सूरत देखने लगा कि वे शत्रु तो नहीं हैं परन्तु थोड़ी देर में मुझे मालूम हो गया कि वे हमारे राजकुमार वीरभद्र और उसके अंगरक्षक बीरू हैं। मैं बेखटके उन दोनों के पास चला गया और कनकलता की गठरी भूमि पर उतारकर सुस्ताने लगा। हम तीनों में कुछ इधर-उधर की बातें होने लगीं, फिर हम लोगों ने उठकर चलने का विचार किया कि इतने में ही एक भीमकाय जंगली सूअर ने हम पर आक्रमण कर दिया। मैं और बीरू उछलकर अपने-अपने घोड़ों पर चढ़ गए, परन्तु राजकुमार मेरे लाख कहने पर भी भूमि ही पर खड़े रहे और उस सूअर का शिकार करने को उद्यत हो गए। सूअर उन पर तीव्र वेग से झपटा और शीघ्र ही उसका काम तमाम कर देता कि बगल की झाड़ी से एक बरछी सर्राती हुई आकर सूअर के कलेजे में घुस गई और वह वहीं ढेर हो गया। थोड़ी देर बाद, उसी झाड़ी में से, जिसमें से बरछी आई थी, एक सुन्दरी निकली। मैंने राजकुमार को सावधान रहने के लिए कहा। परन्तु उन्होंने मेरी एक न सुनी और उस सुन्दरी के साथ एक झाड़ी में चले गए। हम लोगों ने १५ मिनट तक उनकी राह देखी परन्तु जब वे नहीं आए तो मैं भी उसी झाड़ी की ओर बढ़ा। बीरू भी मेरे साथ था। हम सिर पर हाथ रखकर वहीं बैठ गए। हमारे देखते ही देखते वह छलनामयी चुड़ैल उन्हें उठा ले गई और हम कुछ भी नहीं कर सके। मैं राजकुमारी कनकलता को अपने साथ यहां ले आया हूं और उसे आपके गुप्त शयनागार में रखवा दिया है। परन्तु अभी वह अस्वस्थ है। उसे स्वस्थ होने में कुछ दिन लगेंगे।

महाराज ने कहा—प्रीतम ! तुम्हारी कहानी बड़ी आश्चर्यजनक है, फिर भी मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। और भी कोई समाचार है !

प्रीतम—हां, एक समाचार और भी है। चार दिन पहले सून के

प्यासे' ने सोनपुर का खजाना न जाने कैसे नष्ट कर दिया। अब सोनपुर की सारी सेना वेतन न मिलने के कारण छिन्न-भिन्न हो गई है। यदि आप इस समय महाराज चन्द्रदीपसिंह पर चढ़ाई कर दें, तो उनका विशाल राज्य सहज ही आपके अधीन हो जाएगा।

महाराज—ऐसी बात !

प्रीतम—जी हां महाराज !

महाराज—अच्छा ! तो मन्त्री से जाकर कहो कि एक पुरजा लिखकर अभी सोनपुर को रवाना कर दें, ताकि शीघ्र ही महाराज चन्द्रदीपसिंह को हमारी चढ़ाई का समाचार मिल जाए।

प्रीतम—जो आज्ञा महाराज !

इतना कहकर प्रीतम चला गया।

१६

इन्द्रिय-लोलुपता के वश होकर मनुष्य कैसे-कैसे दुष्कर्म कर डालते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। अपनी दुर्वासनाओं की पूर्ति के लिए वह घृणित-से-घृणित तथा पैशाचिक-से-पैशाचिक कार्य करते हुए भी नहीं हिचकता। प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल तथा रूपनगर की महारानी रूपवती इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। दोनों ही अपनी तृष्णा की तृप्ति के लिए नाना प्रकार के दुष्कर्म किया करते हैं। जिस प्रकार महाराज रसिकरसाल स्त्रियों को अपनी वासना-पूर्ति का साधन मात्र समझते हैं उसी प्रकार महारानी रूपवती भी पुरुषों को पंतगा समझती हैं। वह नित्य नये-नये राजकुमारों को पकड़वाकर उनसे अपनी तृप्ति का यथोचित साधन प्राप्त करती हैं।

एक बड़ा-सा कमरा। सुन्दर साज-सजावट तथा तीव्र ज्योति से वह कमरा जगमगा रहा है। एक ओर के कोने में एक भयानक पीतल की मूर्ति एक ऊंचे चबूतरे पर बैठाई हुई है। मूर्ति की ऊंचाई मनुष्य के बराबर है। तीन नेत्र हैं, जिनमें से दो खुले हैं, परन्तु माथे के बीच का नेत्र बन्द है। मूर्ति के सिर के ठीक ऊपर पीतल का चमकता हुआ एक बड़ा-सा घंटा टंगा हुआ है।

मूर्ति के सामने वाले पलंग पर इस समय महारानी रूपवती अधलेटी-सी बैठी हैं। उनके सामने ही उनकी ऐयार चम्पा भी बैठी है। दोनों से धीरे-धीरे कुछ बातें हो रही हैं।

चम्पा—महारानी जी ! आज आप कहां थीं। मैं आपके शयना-

गार की ओर गई तो देखा कि शयनागार के किवाड़ बन्द हैं। दरार से झांकने पर मैंने देखा कि आप चुस्त शिकारी पोशाक पहनकर तथा हाथ में एक लम्बी-सी बरछी लेकर कहीं जाने की तैयारी में हैं।

रूपवती—हां, प्रातःकाल ही मैं आखेट को चली गई थी। जानवरों का शिकार तो नहीं किया, हां एक सुन्दर राजकुमार का शिकार कर लाई हूं। वह प्रेमनगर का युवराज है।

चम्पा—प्रेमनगर के युवराज? महाराज रसिकरसाल के पुत्र राजकुमार वीरभद्र? सचमुच आपने ऐयारों के भी कान काट लिए।

थोड़ी देर बाद रूपवती ने चम्पा से कहा—चम्पा! तीसरे कमरे में राजकुमार वीरभद्र रखे गए हैं। तुम शीघ्र जाओ और उन्हें भेजना।

० • •

पन्द्रह दिन बाद—

दिन-रात विलास में संलग्न रहने के कारण राजकुमार वीरभद्र का स्वास्थ्य नष्ट हो गया वे सूखकर केवल अस्थिपंजर मात्र रह गए।

एक दिन रूपवती ने राजकुमार से कहा—चलो राजकुमार आज तुम्हें तिलस्म की सैर करा लावें।

राजकुमार तैयार हो गए। रूपवती उन्हें साथ लेकर एक गुप्त दरवाजे में घुसी। एक लम्बी-चौड़ी सुरंग थी, उसी में दोनों चलने लगे। थोड़ी दूर पर लोहे का एक विशाल फाटक मिला। रूपवती ने उसे किसी प्रकार खोला और दोनों दरवाज़े के उस पार हो गए। उस पार काफी उजाला था और सुरंग भी बहुत चौड़ी थी, परन्तु थोड़ी ही दूर पर जाकर बन्द हो गई थी। इस लम्बी-चौड़ी सुरंग के दोनों तरफ छोटी-छोटी कोठरियां बनी हुई थीं और कोठरियों के आगे मजबूत जंगले लगे थे।

अधिकांश कोठरियों में कितने ही नौजवान बन्दी दिखाई पड़ रहे थे जो इन दोनों को आते देखकर आश्चर्यभरी दृष्टि से उन्हें देख रहे थे। रूपवती राजकुमार को लिए हुए आगे बढ़ने लगी और एक खाली कोठरी के सामने आकर रुक गई। राजकुमार इसी कोठरी में हमें चलना होगा। चलो आगे।

राजकुमार आगे चले ज्यों ही उन्होंने उस कोठरीनुमा दालान में पैर रखा, त्यों ही रूपवती ने न जाने कौन-सा खटका दबाया। खटका दबाते ही एक ओर की दीवाल से एक जंगला सर्राता हुआ निकलकर दूसरी ओर की दीवाल में आ लगा। दालान का मुंह मोटे-मोटे छड़ों से बन्द हो गया। अब वह दालान भी उन्हीं सब कोठरियों की तरह हो

गई, जिनमें अन्याय कैदी बन्द थे। राजकुमार ने देखा कि उनके निकलने का रास्ता रूपवती ने बन्द कर दिया है। यह देखकर वे आश्चर्य-चकित हो बोले—रूपवती ! यह क्या ?

रूपवती—आजन्म कैद ! समझे !

राजकुमार क्रोध से कांपने लगे। कठोर हृदय रूपवती क्रूरता-पूर्वक हंसती हुई राजकुमार का क्रोध देख रही थी। वह बोली—राजकुमार ! सुख, ऐश्वर्य तथा विलास के साधन सदैव नहीं रहा करते। तुम्हारे भाग्य में यही लिखा था, इसमें मेरा दोष नहीं।

इतना कहकर रूपवती जाने लगी ! अभी वह आधा मार्ग भी तय नहीं कर पाई थी कि उसके कानों में किसी बड़े घंटे के लगातार बजने की आवाज़ आई। रूपवती इस घंटे की आवाज को सुनते ही अचम्भे में आई। वह सोचने लगी—हैं ! यह तिलस्मी घंटा मालूम होता है। मेरे दादा का कहना था कि जिस दिन यह घंटा बजेगा, उसी दिन वह पीतल की भयंकर मूर्ति बोलेगी तो क्या उनका कहना सच होगा ? क्या वह पीतल की मूर्ति वास्तव में आज बोलेगी ? चलकर देखना चाहिए।

रूपवती ने जल्दी-जल्दी पैर उठाया और शीघ्र ही अपने गुप्त शयनागार में पहुंच गई। मूर्ति के सिर के ऊपर वाला पीतल का बड़ा घंटा जोरों से हिल रहा था और पीतल की भयंकर मूर्ति भी न जाने क्यों तीव्र रूप से कांप रही थी।

एकाएक घंटे का बजना बन्द हो गया और मूर्ति के मुंह से एक गड़गड़ाहट की आवाज़ निकलने लगी। धीरे-धीरे यही गड़गड़ाहट शब्दों में परिवर्तित हो गई। रूपवती सावधान ! तुझे 'रक्त मन्दिर' का पुजारी सावधान करता है। अब तेरे पाप का घड़ा भर चुका है। अब यदि शीघ्र ही तूने अपना आचरण न सुधारा तो प्रलय हो जाएगी, प्रलय ! तेरा, तेरे राज्य का, तेरे महल का—सबका सत्यानाश हो जाएगा।

रूपवती ने बाधा देकर कुछ पूछना चाहा परन्तु मूर्ति कहती गई, आज जिस राजकुमार को तूने बन्दीगृह में बन्द किया है वही तेरा अन्तिम शिकार है। कुमार वीरभद्र को अपना आखिरी शिकार जानकर अब किसी अन्य को फंसाने का प्रयत्न न करना, क्योंकि अब आगे जो मनुष्य तेरे जाल में आएगा वही तेरे अनिष्ट का कारण होगा।

रूपवती—परन्तु वह मनुष्य होगा कौन महाराज ?

रूपवती की यह बात सुनकर वह मूर्ति जोरों से हंसी, पुनः कहने

लगी—तू उस मनुष्य को जानना चाहती है, अच्छा इधर देख !

इतना कहकर उस मूर्ति ने अपना दाहिना हाथ उठाया और अपनी चमकती हुई हथेली रूपवती के सामने कर दी। रूपवती ने देखा चमचमाती हुई हथेली पर एक मनुष्य का चित्र अंकित है। वह मनुष्य एक लम्बा-सा काला लंबादा पहने हुए है तथा मुह पर एक भयंकर काली नकाब लगी है। उसकी कमरवाली पेटी से हाथ-भर लम्बे सैंकड़ों छुरे लटक रहे हैं।

रूपवती इसी चित्र को देखकर चौंक पड़ी और उसके मुंह से निकला है—हैं ! 'खून का प्यासा।'

मूर्ति बोली—हां रूपवती ! यही वह मनुष्य है, जो तेरे राज्य के नष्ट होने का कारण होगा। इसलिए इस मनुष्य को भूलकर भी अपनाने की कोशिश न करना।

रूपवती—महाराज ! आप यह क्या कह रहे हैं ? भला मैं इस खूंख्वार डाकू को अपनाने की कोशिश करूंगी। मैं तो उसे पहले ही से घृणा करती थी। 'खून के प्यासे' के समान कुरूप बुड्ढा तो···

मूर्ति—भूलती है रूपवती ! जिस 'खून के प्यासे' को तू कुरूप बुड्ढा कह रही है, उसके समान सुन्दर रूपवान पुरुष दुनिया के पर्दे में कहीं नहीं है। यह मनुष्य सौंदर्य का अनुपम कोष लेकर इस संसार में आया है।

रूपवती—अगर ऐसा है तो 'खून के प्यासे' की असली सूरत मुझे अवश्य दिखाइए।

मूर्ति—ओह ! मुझे मालूम हो गया कि प्रलय अवश्य ही आएगी भवितव्यता यही चाहती है कि तेरे राज्य का नाश हो। अच्छा ! तो ले रूपवती ! उसकी असली सूरत भी देख ले।

इतना कहकर मूर्ति ने अपनी बाईं हथेली रूपवती के सामने कर दी। रूपवती ने देखा—एक अतीव सुन्दर पुरुष का चित्र उस हथेली पर अंकित है। ऐसा सुन्दर रूप रूपवती ने आज तक न देखा था।

मूर्ति ने अपनी मुट्ठी बन्द कर ली और एकदम चुप हो गई। इसी समय चम्पा ने उस कमरे में प्रवेश किया। रूपवती ने उसकी ओर देखा। चम्पा बोली, महारानीजी ! आखिर उस भीषण डाकू 'खून के प्यासे' ने चन्द्रकला की जान ले ही ली। उसका कटा हुआ सिर अभी-अभी राजद्वार पर टंगा हुआ मिला है।

परन्तु पता नहीं कि रूपवती ने उसकी बातें सुनी या नहीं। वह तो उस समय एक दूसरी ही चिन्ता में निमग्न थी। उसके नेत्रों के

सामने तो 'खून के प्यासे' का सुन्दर रूप नाच रहा था। वह मूर्ति की कही हुई बातें एकदम भूल गई थी। 'खून के प्यासे' का असली रूप देखते ही वह उसे पाने के लिए पागल हो उठी।

१७

अब तक पाठकों ने यही समझा होगा कि 'गुरुघंटाल' दुराचारी नर-पिशाच है, जो व्यर्थ ही खंगबहादुर आदि को तंग कर रहा है। परन्तु इतना पढ़ने के बाद पाठकों की यह धारणा निर्मूल सिद्ध होगी और पाठक देखेंगे कि 'गुरुघंटाल' दुराचारी तथा दुष्ट नहीं है, वरन वह न्याय के लिए लड़ रहा है। वह वीर भी है और धैर्यवान भी। वह न्याय पर मिटने वाला है! अपने शत्रु को वह हर प्रकार से ध्वंस करने का प्रयत्न करता है, परन्तु यदि दूसरा कोई शत्रु पर वार करना चाहता है, तो वह क्रोधित हो उठता है। यही तो है उसकी न्याय-प्रियता। अपनी इसी प्रकृति के कारण उस भयंकर बनमानुष 'गुरुघंटाल' ने अपने महान शत्रु 'खून के प्यासे' को महाराज खंगबहादुर के हाथों से बचाया और उसे अपने घर ले जाकर उसके साथ न्यायोचित वर्ताव किया। उसने 'खून के प्यासे' को समझाया कि वह उससे शत्रुता करना छोड़ दे, परन्तु जब 'खून के प्यासे' ने उसकी बात पर जरा भी ध्यान न दिया, तो उसने उसे बेहोश करके अपने ऐयार रज्जन द्वारा जंगल में रखवा दिया ताकि होश में आने पर वह अपने घर चला जाए।

जब से 'खून का प्यासा' 'गुरुघंटाल' के यहां से छूटकर आया था, तब से उसका मन किसी काम में न लगता था। वह रह-रहकर उद्विग्न हो उठता था। उसने 'गुरुघंटाल' से सुना था कि कुमारी कनकलता चिता में भस्म कर डाली गई। उसके शागिर्दों ने भी यही पता लगाया था। इस घटना ने उसके हृदय को मसल दिया था। उसे रह-रहकर 'गुरुघंटाल' पर क्रोध आता था और उसने दृढ़-प्रतिज्ञा कर ली थी जैसे हो वह 'गुरुघंटाल' का शीघ्र ही नाश करेगा क्योंकि वही तो उसके इस दुःख का कारण था! यदि वह खंगबहादुर के सामने प्रकट होकर 'खून के प्यासे' की नाक पर घूंसा मारकर उसे बेहोश न कर देता, तो 'क्या उसके होश में रहते हुए कोई कनकलता पर हाथ उठा सकता।

• • •

'खून का प्यासा' इस समय अपने शयनागार में एक मामूली-सी पोशाक पहने एक पलंग पर पड़ा हुआ है। सुन्दर चेहरे पर विषाद की

करुणा की—स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर हो रही है।

धीरे-धीरे कमरे का दरवाजा खुला और 'खून के प्यासे' के प्रिय शागिद रघुवंश ने कमरे में पैर रखा।

"रघुवंश कोई नया समाचार ?" 'खून के प्यासे' ने पूछा।

रघुवंश बोला, "इधर एक महीने के भीतर 'गुरुघंटाल' ने महाराज खंगबहादुर को दुख देने की चार बार कोशिश की थी, परन्तु हमारे और प्यारेलाल के रहने से महाराज की विपत्ति टल गई। परन्तु इस प्रकार उनको सदैव बचाते रहना असम्भव है। इधर सोनपुर का भी समाचार शोचनीय है! खजाना जल जाने के कारण लाखों दीन-दुखी भूखे मर रहे हैं।

'खून के प्यासे' ने क्षणिक आवेश में आकर सोनपुर का खजाना नष्ट कर दिया था। परन्तु इस समय सन्मार्ग ग्रहण कर लेने पर उसे अपने इस कार्य पर महान् पश्चात्ताप हुआ।

उसने थोड़ी देर के बाद रघुवंश से कहा—रघुवंश सोनपुर के पतन का कारण स्वयं मैं ही हूं। अतः महाराज चन्द्रदीपसिंह की सहायता करना मेरा परम धर्म है। मेरे पास काफी धन है। तुम मेरे खजाने से अशर्फियों के पच्चीस हंडे भरो और उन्हें मेरे शागिर्दों के सिर पर रखवाकर मेरे साथ चलने का प्रबन्ध करो। मैं अभी सोनपुर चलूंगा और सब धन सोनपुर के कोषगृह में रख दूंगा। जाओ! शीघ्र मेरी आज्ञा का पालन करो।

रघुवंश चला गया।

० ० ०

कोषगृह (खजाना घर) का भीतरी फाटक धीरे-धीरे खुला और उसमें से एक काली शक्ल ने खजाने में झांककर कुछ देखा जब उसने देखा कि उस खजाने में कोई भी नहीं है तो वह शक्ल भीतर चली आई। काली शक्ल के साथ ही उस दरवाजे से लगभग पचीस आदमी सिर पर भारी-भारी हंडे रखे हुए खजाने की कोठरी में घुसे। काली शक्ल ने, जोकि वास्तव में 'खून का प्यासा' ही था, उन मनुष्यों को हंडे जमीन पर रखकर बाहर चले जाने की आज्ञा दी। फिर एक से 'खून के प्यासे' ने कहा, "रघुवंश, तुम सबको लेकर घर चलो। मैं महाराज चन्द्रदीपसिंह के पास जा रहा हूं। उन्हें यह खबर देना जरूरी है कि मैंने खजाने में पच्चीस हंडे अशर्फियां रखवा दी हैं ?"

० ० ०

महाराज—मन्त्री! इतना धर्म-पुण्य करते रहने पर भी मैं दुःख

ही उठा रहा हूं। मेरे पुत्र कुमार राजेन्द्रसिंह को गायब हुए तीन-चार साल व्यतीत हो चुके। संतति का इस प्रकार कष्ट सहते रहने पर भी ईश्वर ने एक और वज्रपात कर दिया। राज्य का भरा खजाना उस भीषण डाकू 'खून के प्यासे' ने नष्ट कर दिया। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि ईश्वर मुझी पर इतना रुष्ट क्यों है ? अपने पुत्र के लिए अपने हृदय के टुकड़े राजेन्द्र के लिए--दिन-रात तड़पा ही करता था, अब राज्य के लिए तड़प रहा हूं।

इतने में ही कमरे का दरवाजा धीरे-धीरे खुला और 'खून का प्यासा' भीतर प्रविष्ट हुआ, बोला--महाराज मुझे क्षमा कीजिए।

उसे देखते ही महाराज की भृकुटी चढ़ गई। बोले--भीषण डाकू! तू ही ने तो मुझे दर-दर का भिखारी बना दिया है और···

'खून का प्यासा'--महाराज ! मुझे घोर पश्चाताप हो रहा है। उसके प्रायश्चित के लिए मैंने आपके खज़ाने का दूना धन आपके खज़ाने में रख दिया है। आशा है कि मुझे अवश्य ही क्षमा करेंगे।

महाराज--मेरा कोष दूना ? तुम क्या कह रहे हो !

'खून का प्यासा'--हां ! मैं रणचण्डी की शपथ लेकर कहता हूं कि मैंने २५ हंडे अशर्फियां आपके कोषगृह में अभी-अभी रख दी हैं। आप इतने धन से यथाविधि राजकाज चला सकते हैं। आप मुझे अवश्य क्षमादान कीजिए।

इतना कहकर 'खून का प्यासा' महाराज के चरणों पर गिर पड़ा। महाराज ने उसे सस्नेह उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और बोले--तुम्हारा यह सन्मार्ग ग्रहण देखकर मुझे घोर आश्चर्य एवं हर्ष हो रहा है। मैं तुम्हें कोटिशः धन्यवाद देता हूं और तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा करता हूं।

'खून के प्यासे' ने महाराज से कहा—महाराज, यदि आप चलकर स्वयं ही कोषागृह का निरीक्षण कर लें तो मैं अतीत प्रसन्न होऊंगा।

महाराज—मेरी भी यही इच्छा है कि चलकर देख लिया जाए।

महाराज, मन्त्री तथा 'खून का प्यासा'—तीनों कोषगृह की ओर चले। 'खून के प्यासे' ने आगे बढ़कर दरवाजा खोला और भीतर प्रविष्ट हुआ। पीछे-पीछे महाराज तथा मन्त्री भी आए। परन्तु भीतर की अवस्था देखते ही सब सन्न हो गए। देखा वहां पर एक भी हण्डा न था। सब अशर्फियां गायब थीं। 'खून का प्यासा' यह दृश्य देखते ही ठक्क-सा रह गया। वह सोचने लगा आखिर सब अशर्फियां हुई क्या ? दस ही मिनट में ऐसा परिवर्तन कैसे हो गया।

इतने में ही महाराज गरजकर बोले—झूठा ! दगाबाज ! बता तेरी अशर्फियां कहां हैं ? डाकू ! नरपिशाच ! मेरे ऊपर वज्रपात करके अब मेरी हंसी उड़ाने आया था।

इतना कहकर महाराज ने अपनी तलवार खींच ली। मन्त्री ने भी ऐसा ही किया। 'खून का प्यासा' बोला—महाराज ! आग से न खेलिए। मैं फिर कहता हूं कि इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं।

परन्तु महाराज ने उसकी एक न सुनी और तलवार का एक भर-पूर हाथ 'खून के प्यासे' पर चलाया। 'खून का प्यासा' भी उस समय पूर्णतया क्रोधित था—एक तो हण्डों के गायब हो जाने से वह पागल हो ही रहा था, दूसरे महाराज के अपशब्दों ने भी आहुति का काम किया। वह भूल गया कि उसने सन्मार्ग ग्रहण करने की प्रतीक्षा की है।

महाराज ने ज्योंही तलवार का वार 'खून के प्यासे' पर किया उसी समय 'खून के प्यासे' ने कसकर एक घूंसा महाराज की नाक पर मारा। उस जगत् प्रसिद्ध वीर का प्रहार महाराज न सह सके। उनका सिर दीवाल से जा टकराया, और बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े। महाराज की अवस्था देखकर मन्त्री तेजी से 'खून के प्यासे' पर झपटा। उसी समय 'खून के प्यासे' की दुधार तीव्र रूप से हवा में नाच उठी और छप्प से नीचे गिरी—दूसरे क्षण मन्त्री का धड़ जमीन पर गिरकर छटपटाने लगा।

खून की धारा देखकर 'खून के प्यासे' का आवेग एकाएक शान्त हो गया। उसने आवेग से अपने दोनों नेत्र मूंद लिए, तत्पश्चात् बोला—ओह ! निरपराध खून कर डाला ! लेकिन मेरा वह अगाध धन कौन उठा ले गया ! किसने मुझे इस प्रकार नीचा दिखाया ? जब मैं महाराज चन्द्रदीपसिंह के आगे मुंह दिखाने योग्य भी नहीं रहा।

'खून के प्यासे' ने एक बार अपनी आंखें खोलीं। देखा—महाराज संज्ञा शून्य पड़े हुए हैं। मन्त्री की लाश रक्त में डूबी हुई शान्त पड़ी थी। फर्श पर खून फैला हुआ था। 'खून के प्यासे' को ऐसा मालूम हुआ, मानो वह पागल हो जाएगा। जब से उसने सन्मार्ग ग्रहण किया था तब से उस पर विपत्ति ही विपत्ति लहरा रही थी। राजकुमारी कनकलता चल बसी—सोनपुर के खजाने से उसका धन भी गायब हो गया—महाराज चन्द्रदीपसिंह ने उसका अनादर किया—इत्यादि बातों को सोचकर 'खून का प्यासा' अपने आपे में नहीं रहा था। फिर भी वह चाहता था अपने शत्रु को दण्ड देना। वह शत्रु—जिसने अशर्फियों के हण्डे गायब कर दिए। वह शत्रु जिसने महाराज द्वारा उसका अनादर

कराया था—जिसने उसे कुमार्ग पर चलने को बाध्य किया था।

उसके शत्रु ने अपना काम ऐसा सफाई से किया था कि 'खून का प्यासा' आश्चर्यचकित रह गया। उसके जाने और आने में केवल दस मिनट ही लगे और इतनी ही देर में असर्फियों के हण्डे गायब?

१८

दीवाल से सटा कर एक बड़ी-सी मेज रखी हुई है। मेज पर कुछ अनूठे कल-पुरजे लगे हुए हैं और ये ही कल-पुरजे सारी मेज पर फैले हुए हैं। मेज पर एक कोने में, दीवाल से उठाकर, शीशम का एक चौड़ा तख्ता खड़ा किया हुआ है। उस तख्ते पर चमकदार पालिश की हुई है, जिससे मालूम होता है कि इन कल-पुरजों का लगाव अवश्य इसी तख्ते से है। ये कुछ पुरजे भी इतने विचित्र तथा अद्भुत हैं, किसी में छोटा-सा हैण्डिल लगा है, तो किसी में कोई दांतदार पहिया। यह कोई वैज्ञानिक यंत्र है। मेज पर इस कल-पुरजों के अतिरिक्त और कोई भी चीज नहीं है।

मेज के पास ही दो-एक कुर्सियां पड़ी हुई हैं। एक आराम कुर्सी भी है, जिस पर एक मनुष्य अपनी टांगें फैलाए हुए, एकाग्रचित हो किसी पुस्तक का अवलोकन कर रहा है। पुस्तकावलोकन में वह इतना तल्लीन है कि अपने आसपास का तनिक भी ध्यान नहीं है। इस मनुष्य के रूप-रंग का वर्णन सुनकर हमारे पाठक महान आश्चर्य करेंगे, क्योंकि इस मनुष्य का रूप-रंग, चाल-ढाल, काठ कद सब कुछ 'खून के प्यासे' की असली मूरत की तरह है। उसी के समान अद्वितीय सुन्दर है। यह मनुष्य वास्तव में एकदम दुर्जयसिंह 'खून का प्यासा' का प्रतिरूप है, अर्थात् इसके रूप में ज़रा भी अन्तर नहीं। थोड़ा-सा अन्तर है—वह यह कि इस मनुष्य की मूंछें दुर्जयसिंह की मूंछों से, कुछ अधिक काली हैं और ध्यानपूर्वक देखने से यह छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की अवस्था का मालूम पड़ता है, अर्थात् दुर्जयसिंह से पांच-छः वर्ष बड़ा।

उस कमरे का दरवाज़ा, जो थोड़ा ही खुला था, धीरे-धीरे पूरा खुल गया और उसमें से एक बूढ़ी स्त्री ने सर निकालकर भीतर की ओर देखा। वह स्त्री ४५ वर्ष से अधिक की न होगी, परन्तु विपत्ति सागर की प्रचंड लहरों ने उसे ६०-७० वर्ष की बूढ़ी बना दिया है। उसके मुख पर दुःख की एक स्पष्ट छाप अंकित है, मानो संसार का सारा दुःख उसी बेचारी के ऊपर उमड़ पड़ा हो। परन्तु उसकी चाल-ढाल तथा व्यक्तित्व

से यह तुरन्त ही मालूम हो जाता है कि कभी वह अवश्य ही किसी भले घर की गृहिणी रही होगी। उस स्त्री ने पुकारा—विजय ! बेटा विजयसिंह !

वह मनुष्य चौंक पड़ा और बोला—कौन ! मां ! ··· क्या है मां ?

मां बोली—तुम इतनी एकाग्रता से क्या सोच रहे थे बेटा ?

कुछ नहीं मां ! केवल यही सोच रहा था कि अपने शत्रुओं को—अपने आगे के कंटकों को—किस प्रकार दूर करूं !

वह बदनाम 'खून का प्यासा' मेरे रास्ते में कांटा बनकर खड़ा हो गया है। मैंने बहुत चाहा कि वह मुझसे शत्रुता करना छोड़ दे, परन्तु वह दुष्ट मानता ही नहीं। खैर ! विजयसिंह के रास्ते में वह अधिक दिन तक रोड़े न अटका सकेगा। इस समय मुख्य शत्रु 'खून का प्यासा' ही है। बिना उसे यमलोक पहुंचाए मैं अपने शत्रुओं से बदला नहीं ले सकूंगा।

बेटा ! तू क्षत्रिय पुत्र है। अपनी मां का आज्ञाकारी लाल है। मैं तुझे आशीर्वाद देती हूं कि तेरी आकांक्षाएं अवश्य पूरी हों।

मां तुम्हारे चरणों की कृपा से मैं अपना सारा कार्य अवश्य पूर्ण करूंगा। तुम निश्चिन्त रहो। मेरे पास एक से एक बढ़कर, अस्त्र-शस्त्र वैज्ञानिक यंत्र तथा योग विद्या द्वारा साधित मन्त्र है। मैं उनके द्वारा सब कुछ कर सकता हूं। अब मैं यह देखना चाहता हूं कि मेरा प्रधान शत्रु रसिकरसाल इस समय क्या कर रहा है। तुम भी आकर इस कुर्सी पर बैठ जाओ मां ! और ध्यान से इस 'प्लानचेट' की ओर देखो।

'प्लानचेट' से विजयसिंह का मतलब उसी लकड़ी के तख्ते से था जो मेज के कोने में दीवाल से उठंग कर खड़ा हुआ था। उसने मेज पर लगे हुए कई पुरजे ऐंठ दिए। महीन सर्र-सर्र की आवाज होने लगी।

विजय पुनः मेज के पास आकर कुर्सी पर बैठ गया। इस समय 'प्लानचेट' में एक विचित्र परिवर्तन हो रहा था। वह धीरे-धीरे चमकने लगा था। थोड़ी देर में उसकी चमक इतनी बढ़ी कि शीशे की तरह चमकने लगा। विजय बोला—मां, मैं योग विद्या द्वारा प्रेत को बुलाता हूं, घबड़ाना मत।

इतना कहकर विजय न जाने क्या मन-ही-मन बुदबुदाने लगा। उसकी आंखें ढंप गईं। शरीर शिथिल हो गया। वह कुर्सी पर इस प्रकार बैठ गया, मानो बेहोश हो गया हो। इसी समय कमरे के एक कोने में एक दीपशिखा की तरह ज्वाला उत्पन्न हुई और पुनः तुरन्त वह बुझ गई ! अब विजय को धीरे-धीरे होश आने लगा और किंचित

वह पूर्णतया चैतन्य होकर अपनी मां से बोला——मां ! प्रेत इस कमरे में आ गया है। वह देखो उस कोने में एक काली-सी परछाईं और उसकी अंगारे जैसी जलती हुई आंखें लेकिन वह हम लोगों का हितैषी है। डरो नहीं मां, यह मेरा हितैषी है।

इतना कहकर विजय पुन: उस प्रेत से बोला——'पवित्र आत्मा ! क्या तुम मेरी आज्ञा मानोगे ?' विजय के इतना कहते ही कोने में पुन: दीपशिखा-सी ज्वाला उत्पन्न हुई और फिर तुरन्त ही बुझ गई।

विजय पुन: बोला——बहुत अच्छा ? तो कृपया बताओ कि रसिक-रसाल इस समय क्या कर रहा है ?

विजय के इतना कहते ही दीपशिखा फिर जल उठी और धीरे-धीरे आगे बढ़कर 'प्लानचेट' के पास आ गई। दीपशिखा की परछाईं 'प्लान-चेट' पर पड़ी और तुरन्त ही उसका रंग बदलने लगा। कुछ ही देर बाद विजय ने देखा कि 'प्लानचेट' पर एक चित्र अंकित है। उस चित्र में दिखाया गया कि महाराज रसिकरसाल दो सुन्दर नवयुवतियों के साथ क्रीड़ा में निमग्न हैं।

विजय ने अपनी मां से कहा——देख रही हो मां, मेरे पिता का घातक किस प्रकार सुख भोग रहा है ! अच्छा ! अब मैं जरा खंग-बहादुर की सुध लेना चाहता हूं (प्रेतात्मा) पवित्र आत्मा दृश्य बदल दो। अब महाराज खंगबहादुर का निवास स्थान···

'प्लानचेट' का दृश्य तुरन्त हीं बदल गया और एक नया ही चित्र उद्भुत हुआ। उसमें दिखाई पड़ रहा था कि महाराज खंगबहादुर आंखों से आंसू बहाते हुए बैठे हैं।

विजय बोला——देखा मां, दुष्ट ने क्रोध में आकर अपनी पुत्री कनक-लता को जीवित ही चिता में भस्म कर दिया और अब बैठा हुआ उसके नाम पर आंसू बहा रहा है। इसी दुर्दान्त क्रोधी ने क्रोध में आकर अपनी बड़ी महारानी हेमा की हत्या कर डाली थी——और उसीका घोर अप-मान किया था। मां वह दृश्य मैं कभी नहीं भूल सकता (प्रेतात्मा से) पवित्र मूर्ति ! अब मेरे महान् शत्रु 'खून के प्यासे' की गतिविधि दिखाओ।

दृश्य पुन: बदल गया। 'प्लानचेट' पर एक दूसरा ही चित्र अंकित हो गया। विलय ने देखा कि 'खून का प्यासा' इस समय जंगल ही जंगल चला जा रहा है। उसके रास्ते से मालूम होता है कि वह इस समय सोनपुर राज्य की ओर जाना चाहता है। उसके पीछे-पीछे पच्चीस-तीस शागिर्द भी हैं जो अपने सिरों पर भारी-भारी हण्डे उठाए हुए चले

जा रहे हैं।

विजय बोला—हैं ! 'खून का प्यासा' सोनपुर की ओर किस-लिए जा रहा है और इन हण्डों में क्या है ? अशर्फियां हैं या गहने या पानी—कुछ समझ में नहीं आता। (प्रेत से) पवित्र आत्मा ! बताओ तो ? 'खून का प्यासा' इस समय कहां जा रहा है और उसके इन हण्डों में क्या है ?

दृश्य पुनः बदल गया और 'प्लानचेट' पर लिखावट दृष्टिगोचर होने लगी। उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—इन हण्डों में चम-कती हुई मूल्यवान अशर्फियां हैं। इन्हें ले जाकर वह सोनपुर के खजाने में गुप्त रीति से रख देगा और तब महाराज चन्द्रदीप को खबर देगा।

विजय बोला—इतना धन ! जिससे बीसों राज्य खरीद जा सकें ? उफ़ !···अच्छा ! पवित्र आत्मा ! अब तुम जा सकते हो।

यह दीपशिखा प्लानचेट के पास से हटकर पुनःकमरे के कोने की ओर बढ़ी और वहां जाकर अदृश्य हो गई। 'प्लानचेट' भी अपनी पूर्वा-वस्था में आ गया। विजय ने पुरजों का चलना रोक दिया और उठकर किवाड़ खोल दिए। कमरे में पुनः मद्धिम प्रकाश फैल गया। इसके बाद विजय दीवार में बने हुए चौड़े ताखे के पास जाकर खड़ा हो गया। उस ताखे में एक छोटा-सा छेद दिखाई पड़ रहा था और ताखे के ऊपर एक पेंच था। विजय ने उसी पेंच को घुमा दिया, तत्पश्चात् ताखे में मुंह डालकर कहा—सुना तुम लोगों ने। सब लोग तैयार होकर मारा-मार सोनपुर की ओर चलो। पांच मिनट में वहां पहुंच जाओ और खजाने के पास रुककर मेरी प्रतीक्षा करो। मैं भी बहुत जल्द पहुंचूंगा। 'खून का प्यासा' अपने पच्चीस शागिर्दों के सर पर अशर्फियों के हण्डे रखवा कर सोनपुर जा रहा है। मैं उसकी अशर्फियों को गायब करना चाहता हूं। तुम लोग सावधान रहना और सोनपुर पहुंचकर 'खून के प्यासे' से अपने को छिपाए रखना। समझे।

विजय शीघ्रतापूर्वक उस काले कमरे से बाहर निकल गया और एक-दूसरे कमरे में आया ! पास ही एक बड़ी-सी आलमारी थी, उसे उसने खोला और भीतर से एक काली पोशाक बाहर निकाली। वह पोशाक बड़ी लम्बी-चौड़ी थी और किसी भयानक बनमानुष की तरह मालूम पड़ती थी। पोशाक में बने हुए नकली दांत भयंकर हंसी हंस रहे थे। वह पोशाक भीतर से तार के जाली की बनी हुई थी, परन्तु ऊपर से उस पर बनमानुषों की तरह घने-घने बाल लगे हुए थे। विजय ने उस पोशाक को पहन लिया।

एकाएक एक धड़ाके की आवाज हुई और जहां वह बनमानुष खड़ा था, बहुत सा धुआं पैदा हो गया। थोड़ी ही देर में वह धुआं उड़ गया और वह कोठरी पहले की तरह साफ हो गई परन्तु अब वह भीमकाय बनमानुष वहां नहीं था। वह लुप्त हो गया था।

वही था 'गुरुघंटाल'

१९

जिस समय 'खून का प्यासा' सोनपुर के कोषगृह में अपने पच्चीस शागिर्दों के सिर पर अशर्फियों के बडे-वड़े हंडे रखवाए हुए पहुंचा, उस समय उसका महान शत्रु 'गुरुघंटाल' भी वहीं पर उपस्थित था परन्तु 'खून का प्यासा' उसे नहीं देख सकता था क्योंकि वह योगमाया के बल से अदृश्य था। मानवी आंखें उसे नहीं देख सकती थीं। 'गुरुघंटाल' के अन्यान्य आदमी भी 'खून के प्यासे' के पहुंचने से पहले ही पहुंच चुके थे और किसी गुप्त स्थान में छिपे हुए थे। जिस समय 'खून के प्यासे' ने सब हंडे कोषगृह में रखवा दिए और अपने शागिर्दों को घर की ओर भेज कर आप भी महाराज चन्द्रदीप को खबर देने चला गया, उसके दस सेकेंड बाद ही कोषगृह में एक धीमा-सा धड़ाका हुआ और वह भयानक 'गुरुघंटाल' जो पहले ही से वहां उपस्थित था, प्रकट हो गया। उसने आगे बढ़कर कोषगृह का मजबूत दरवाजा धीरे-से खोला और बाहर की ओर सिर करके किसी से कहा—चले आओ! सब लोग।

उसके ऐसा कहते ही पच्चीसों नकाबपोश कोषगृह में चले आए।

'गुरुघंटाल' ने कहा—सब लोग एक-एक हंडा अपने सिर पर उठा कर शीघ्रतापूर्वक यहां से चल दो जल्दी करो—आवाज न हो।

बस नकाबपोशों ने एक-एक हंडा उठा लिया और कमरे से बाहर हो गए। 'गुरुघंटाल' ने आगे बढ़कर कोषगृह का दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और दूसरे ही क्षण कोषगृह के वायुमंडल में मिलकर वह भी अदृश्य हो गया।

अब तो पाठक समझ ही गए होंगे कि 'खून के प्यासे' का सारा धन उड़ा ले जाने वाला, 'गुरुघंटाल' ही था।

० ० ०

विजयसिंह—रतन! तुम कहां से आ रहे हो?

रतन—सरकार! मैं प्रेमनगर से आ रहा हूं। वहां महाराज रसिकरसाल सोनपुर राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं

खून—५

और मेरे विचार से एक सप्ताह के अन्दर ही उनकी सारी सेना छोन-पुर की ओर प्रस्थान कर देगी।...

विजय—अच्छा ! तो मालूम हो गया कि अब मेरे काम करने का समय आ पहुंचा। अब मेरे हृदय की धधकती हुई ज्वाला रसिकरसाल को भस्म करके ही शान्त होगी। इस समय महाराज चन्द्रदीपसिंह के पास न तो सोना है और न धन। 'खून के प्यासे' का सारा धन जिसे मैं आज उठा लाया हूं अपनी ओर से महाराज चन्द्रदीपसिंह को दे दूंगा और उनसे प्रार्थना करूंगा कि आप सारी सेना को एकत्रित कर रसिकरसाल का मुकाबला करें तथा इस लड़ाई के ... सेनापतित्व की बागडोर मेरे ही हाथों में दें यदि ऐसा हो जाएगा तो मैं रणभूमि में अपने पिता के हत्यारे रसिकरसाल से प्रतिशोध ले सकूंगा।

रतन—सरकार ! आप न्यायशील तथा दयावान हैं। महाराज चन्द्रदीप को सहायता करना आपको हर प्रकार से उचित है। महाराज चन्द्रदीपसिंह की ओर से युद्ध करने से आप सरलतापूर्वक रसिकरसाल से बदला ले सकेंगे।

विजय—अच्छा अब तुम दोनों जाओ।

राजन और रतन चले गए।...तत्पश्चात् विजय अपनी मां से बोला—मां ! अब रसिकरसाल के पापों का घड़ा भर चुका है। अब वह शीघ्र ही दुर्गति की मत्यु को प्राप्त होगा। मेरा विचार तो यह है कि मैं महाराज चन्द्रदीप की सहायता करूं और उन्हीं की ओर से लड़ूं तथा युद्ध में रसिकरसाल को कैद कर लूं, तत्पश्चात उसे लाकर तुम्हारे चरणों में डाल दूं।

मां—बेटा ! तुम जो कुछ भी करोगे, सब स्वीकार है।

विजय—मां ! एक आश्चर्य की बात तो मैंने अभी तक तुम्हें नहीं सुनाई। एक सप्ताह पहले मैं चुनार राज्य में, राजकुमारी कनकलता को उठा लाने के लिए गया था।

मां—राजकुमार कनकलता को उठाने के लिए ? क्यों ? तुम उसे यहां लाकर क्या करते ?

विजय—घबड़ाओ नहीं मां ! तुम्हारा पुत्र व्यभिचारी नहीं है। उसमें कर्तव्यपरायणता की तीव्र धारा प्रवाहित हो रही है। जानती हो राजकुमारी कनकलता मेरे शत्रु की बेटी है। उसे यहां लाकर दासी बनाता और खंगबहादुर से अपने अपमान का बदला लेता...यही मेरा विचार था। परन्तु मेरे इस कार्य में दुष्ट 'खून के प्यासे' ने विघ्न डाल दिया। फल यह हुआ कि मैंने क्रोध में आकर उसकी नाक पर

घूंसा मारा और वह बेहोश होकर गिर पड़ा। खंगबहादुर ने उसे कैद कर लिया। 'खून के प्यासे' और राजकुमारी में प्रेम था। जब खंगबहादुर को यह मालूम हुआ तो वह क्रोध से पागल हो गया और राजकुमारी को जीवित ही चिता में झोंक दिया। मैं यह घटना पास ही से देख रहा था। जब राजकुमारी प्रचण्ड चिता में झोंक दी गई तो मैंने जान पर खेलकर उसे बाहर निकाला और एक पेड़ के नीचे रखकर 'खून के प्यासे' को छुड़ाने को चला गया परन्तु जब लौटा तो राजकुमारी को गायब पाया। न जाने उसे कौन उठा ले गया। वह अपने से तो कहीं जा नहीं सकती थी, क्योंकि उसका सारा शरीर बुरी तरह से झुलस गया था।

मां—यह तो बड़ी आश्चर्यमयी घटना है बेटा।

विजय—हां मां, मेरे सब ऐयार और स्वयं मैं भी छानबीन करके हार गया, परन्तु राजकुमारी कनकलता का कहीं पता न लगा। अब उसका पता लगाने का केवल एक ही मार्ग है और वह 'प्लानचेट' मैं प्रेतसाधना से उसका पता लगाना चाहता हूं। तुम जरा सावधानी से बैठ जाओ।

विजय—पवित्र आत्मा! बतलाओ कि राजकुमारी कनकलता जीवित है या नहीं? जीवित है तो कहां है?

कोने में पुनः दीपशिखा धीरे-धीरे उस चमकते हुए 'प्लानचेट' की ओर बढ़ी और उसके पास आकर रुक गई। दूसरे ही क्षण उस पर एक सुन्दर चित्र अंकित हो गया। विजय ने देखा कि अपने विशाल भवन में महाराज रसिकरसाल बैठे हैं। उनके सामने ही लाल नेत्र किए हुए राजकुमारी कनकलता भी है। महाराज रसिकरसाल उससे कुछ हंस-हंसकर बातें कर रहे हैं, परन्तु कनकलता क्रुद्ध सिंहनी की भांति घूर रही है।

यह दृश्य देखते ही विजय की आंखें लाल हो गईं। वह कुरसी पर से तेजी से उठ खड़ा हुआ और बोला—ओह! राजकुमारी इस नर-पिशाच के पंजे में है? तब तो यदि शीघ्र ही न पहुंचा तो अनर्थ हो जाएगा। दुष्ट रसिकरसाल एक अनबिधा फूल पाकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा।

विजय शीघ्रतापूर्वक कमरे से बाहर निकल गया और अपने शयनागार में पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने आलमारी में से वही भयानक बनमानुष की पोशाक निकाली और उसे अपने ऊपर पहन लिया। विजय की सुन्दर आकृति एक नर-पिशाच के रूप में परिवर्तित हो गई। एक

क्षण में ही विजयसिंह तुरन्त 'गुरुघंटाल' बन गया।
और शीघ्र ही वह अन्तर्धान हो गया।

२०

जब से प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल के यहां राजकुमारी कनकलता उनके ऐयार प्रीतम द्वारा पकड़कर लाई गई है तभी से महाराज फूले नहीं समा रहे हैं। आज तक उनके सामने जितनी भी युवतियां लाई गई थीं, वे सब कनकलता के सामने तुच्छ थीं। यही कारण था कि कनकलता की सेवा-सुश्रूषा बड़ी ही सतर्कतापूर्वक की जा रही थी।

महाराज रसिकरसाल ने राजकुमारी कनकलता को अत्यन्त गुप्त स्थान पर छिपा कर रखा था, यही कारण था कि 'गुरुघंटाल' और उसके आदमी लाख सर पटकने पर भी उसका पता न पा सके थे। बेचारा 'खून का प्यासा' तो कनकलता की ओर से पूर्णतया निराश हो चुका था। वह तो यही समझे हुए था कि उसकी प्रेमिका चिता की भेंट चढ़ा दी गई। अब वह उसे कदापि नहीं मिल सकती।

जब महाराज रसिकरसाल ने राजकुमारी कनकलता के पूर्णतया स्वस्थ हो जाने का समाचार सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गुप्त विलासगृह में राजकुमारी को लाने की आज्ञा दी! उस समय रात्रि के ८ बज चुके थे। घना अंधकार चारों ओर अपनी चादर फैलाए हुए था। महाराज के कथनानुसार राजकुमारी उनके विलास-गृह में पहुंचा दी गई। राजकुमारी महाराज को देखकर तथा विलास-गृह की सजावट का अवलोकन कर चौंक पड़ी। वहां का रंग-ढंग देख-कर वह जान गई कि वह वहां क्यों लाई गई है। महाराज ने उसका हाथ पकड़ लिया और खींचकर उसे चारपाई पर बिठा दिया, परन्तु राजकुमारी क्रुद्ध सर्पिणी की भांति उठ खड़ी हुई। उसके होंठ कांपने लगे। वह बोली—आप कौन?

महाराज—मैं प्रेमनगर का अधीश्वर रसिकरसाल हूं।

राजकुमारी—ओह! आप ही रसिकरसाल हैं? छोड़ दीजिए आप मुझे! मैं आपके योग्य नहीं हूं। मैं अपना हृदय दान कर चुकी हूं। मैं 'खून के प्यासे' को अपना हृदय दे चुकी हूं। मैं अब राजकुमारी नहीं रही। एक सती बाला पर अत्याचार करना आपको शोभा नहीं देता।

महाराज—जितनी युवतियां यहां पर आती हैं, वे सभी तुम्हारी ही तरह पहले-पहल अपने सतीत्व की डींग हांकती हैं परन्तु कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर मेरी दासी बन जाती हैं।

राजकुमारी—यदि आप अपना भला चाहते हैं, तो मेरे शरीर को हाथ न लगावें, नहीं तो वह दोनों का रक्षक ईश्वर आपको जीवित ही भस्म कर देगा।

महाराज—जीवित ही भस्म कर देगा?···हं, हं, हं! अच्छा! देखता हूं कि तुम्हारा परमात्मा कहां है।

इतना कहकर महाराज ने सीटी बजाई। तुरन्त ही वहां पर कई सशस्त्र दासियां आ उपस्थित हुईं। महाराज ने उनसे कहा—तुम इसे इस पलंग पर लिटाकर, इसके हाथ-पैर कसकर बांध दो।

दासियों ने राजकुमारी को पकड़कर जबरदस्ती पलंग पर चित लिटा दिया। तत्पश्चात् कमरे से बाहर चली गईं।

महाराज बोले—राजकुमारी! याद कर लो अपने रक्षक ईश्वर को। और राजकुमारी की ओर बढ़ने लगे।

उसी समय किसी ने पीछे से महाराज की गर्दन अपने लोहे जैसे पंजों द्वारा पकड़ ली और उन्हें ऊपर उठा लिया! साथ ही एक विकट आवाज़ सुनाई पड़ी—व्यभिचारी! देखा राजकुमारी के रक्षक को।

राजकुमारी ने भी उधर दृष्टि डाली। देखा—गुरुघंटाल, महाराज रसिकरसाल की गर्दन दबोचे खड़ा है।

राजकुमारी गुरुघंटाल को देखते ही चीख पड़ी। उसकी समझ में नहीं आया कि यह नरपिशाच उसे रसिकरसाल के हाथों से क्यों बचा रहा है! गुरुघंटाल ने महाराज को छोड़ दिया। महाराज ने अपने इस विकट शत्रु की ओर देखा और वे कांप उठे। वे अपने ऐयार प्रीतम से सुन चुके थे कि यह वनमानुष असाधारण शक्ति वाला है, तभी तो धधकती हुई चिता में से वह कनकलता को उठा ले गया था और उसे ज़रा भी कष्ट नहीं हुआ था।

गुरुघंटाल भयानक आवाज़ में बोला—क्रूर! व्यभिचारी! तूने कितने-कितने भीषण अत्याचार किए हैं, यह कोई भी व्यक्ति नहीं जानता। यदि जानता हूं तो केवल मैं और महारानी कलावती!··· हैं! तू महारानी कलावती का नाम सुनकर चौंकता क्यों है! नर-पिशाच! तुझे महाराज इन्द्रसेन तथा महारानी कलावती के पाप को भोगना पड़ेगा!···अच्छा! राजकुमारी कनकलता का बन्धन जल्द

खोल दे। बढ़ आगे।

महाराज रसिकरसाल गुरुघंटाल की आज्ञा की अवहेलना न कर सके और उन्होंने आगे बढ़कर कांपते हुए हाथों से राजकुमारी कनकलता के बन्धन खोल दिए। राजकुमारी उठ खड़ी हुई। गुरुघंटाल ने उससे कहा—राजकुमारी! इधर आओ! मेरे पास आओ!

उसकी आंखों में न जाने कैसी शक्ति थी···उसकी आवाज़ में न जाने कैसा आकर्षण था कि राजकुमारी दुविधा छोड़कर 'गुरुघंटाल' की बगल में जा खड़ी हुई और उसका बालदार लम्बा हाथ पकड़कर क्रोधपूर्ण दृष्टि से रसिकरसाल की ओर वह देखने लगी। गुरुघंटाल से वह इस प्रकार सटकर खड़ी थी, मानो वह उसका कोई आत्मीय या महान् हितैषी हो।

थोड़ी देर में महाराज ने शक्ति संचय कर कांपती हुई आवाज में कहा—तो तुम मुझ से चाहते क्या हो?

'गुरुघंटाल' बोला—चाहता हूं, केवल निरपराधों के खून का बदला। महाराज इन्द्रसेन तथा महारानी कलावती का प्रतिशोध! दुष्ट तूने किस प्रकार अपने स्वामी महाराज इन्द्रसेन के कलेजे में छुरा भोंक कर, उनके राज्य प्रेमनगर को अपने हाथ में कर लिया सारी घटनाएं मैं जानता हूं। जरा इधर देख!

इतना कहकर 'गुरुघंटाल' ने अपना लम्बा दाहिना हाथ ऊपर उठाया! महाराज की दृष्टि उसकी हथेली पर पड़ी उन्होंने भय से अपनी आंखें मूंद लीं। उनके मुंह से केवल इतना ही निकला—ओह तुम? कनकलता ने भी आगे बढ़कर 'गुरुघंटाल' की हथेली पर दृष्टि डाली उसकी हथेली पर एक चक्राकार गुदना गुदा हुआ था और महाराज रसिकरसाल इसी गुदने को देखकर डर गए थे। उनके पैर कांपने लगे और वे धम्म से पृथ्वी पर गिर पड़े।

'गुरुघंटाल' बोला—अन्यायी! देख, मैं कौन हूं? याद रख! केवल मैं ही नहीं, महारानी कलावती अभी तक जीवित हैं। मैं आज जा रहा हूं, लेकिन शीघ्र ही मेरी तेरी अन्तिम भेंट होगी।

इतना कहकर 'गुरुघंटाल' ने राजकुमारी की ओर दृष्टि डाली। राजकुमारी! मुझ पर विश्वास करो। मैं भयंकर होते हुए तुम्हारा हितैषी हूं। आओ मेरी पीठ पर बैठ जाओ।

राजकुमारी बिना कुछ आनाकानी किए उछलकर 'गुरुघंटाल' की विशाल बलवान पीठ पर बैठ गई। दूसरे ही क्षण एक धड़ाके की आवाज हुई और वह भयानक जीव राजकुमारी कनकलता के साथ

वायुमण्डल में विलीन हो गया।

जब महाराज का शरीर कुछ स्वस्थ हुआ, तो वे उठे और एक दासी को बुलाकर अपने ऐयार प्रीतम को भेज देने की आज्ञा दी और अपना माथा पकड़कर घबड़ाने लगे—क्या वही है। परन्तु अभी तक वह था कहां? और उसकी यह भयानक वनमानुष की शकल कहां से हो गई? वह तो बहुत सुन्दर था और क्या महारानी कलावती भी अभी तक जीवित है? उफ! मालूम होता है कि मेरे सुख के दिन आ गए।

इतने में ही प्रीतम भी आ पहुंचा। महाराज ने उससे कहा—प्रीतम मैं तुम पर पूर्ण विश्वास करता हूं। इसलिए आज मैं तुमको एक गोपनीय बात बता रहा हूं। आज से अठारह वर्ष पहले इस प्रेमनगर के राज्य के महाराज इन्द्रसेन के दो बेटे भी थे। बड़े का नाम था राजकुमार विजयसिंह और छोटे का नाम मुझे ठीक से याद नहीं पड़ता। उस समय मेरे हृदय में यह प्रचंड अभिलाषा उत्पन्न हुई कि मैं भी राजा बनकर विलासमय जीवन व्यतीत करूं। बस मैं तभी से राजा-रानी और उनके दोनों बेटों को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न करने लगा। छोटा लड़का उस समय केवल दो वर्ष का था। उसे मैंने अपने एक सिपाही द्वारा चुरा मंगाया और एक घनघोर जंगल में छुड़वा दिया। तत्पश्चात् एक दिन मौका पाकर मैं अपने कुछ विश्वस्त सिपाहियों को लेकर महाराज इन्द्रसेन के कमरे में घुस गया और उसके कलेजे में अपना खंजर भोंक दिया। महाराज तुरन्त मर गए। उन्हें समाप्त कर चुकने के पश्चात् मैं महारानी कलावती के कमरे की ओर बढ़ा, परन्तु महारानी अपने बड़े बेटे विजयसिंह को लेकर भाग गई थीं। उस समय विजयसिंह की अवस्था आठ-नौ वर्ष की थी। उसके बाद मैंने महारानी की बहुत खोज की, परन्तु उसका कहीं पता न लगा। मैंने यह शोर कर दिया था कि महारानी, महाराज इन्द्रसेन की हत्या करके भाग गई है। मेरी इस बात पर किसी को शक न हुआ और कुछ ही दिनों में मैं राजा बना दिया गया, क्योंकि उस समय राजघराने का कोई भी व्यक्ति जीवित न था।... पर आज की विचित्र घटना को देखकर मुझे मालूम हो गया है कि न तो विजयसिंह ही अभी तक मरा है और न ही महारानी कलावती ही। दोनों अभी तक जीवित हैं। तुमने जिस भयंकर बनमानुष का उस दिन जिक्र किया था, वही आज यहां पर आया था और कनकलता को छुड़ा ले गया। जाते समय उसने मुझसे विजयसिंह और महारानी कलावती के जीवित होने की बात कही और अपनी हथेली भी मुझे दिखाई। महाराज इन्द्रसेन के घराने में न जाने कब से यह रीति चली आ रही थी

कि राजघराने के—महाराज-महारानी तथा उनके पुत्रों की हथेलियों पर—एक चक्राकार गुदना गोदा जाता था। वही गुदना मैंने उस बनमानुष की हथेली पर गुदा देखा है।

प्रीतम—यह तो बड़ी आश्चर्य की बात है महाराज !

२१

सोनपुर के महाराज चन्द्रदीपसिंह की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगी। राज्य की चिन्ता ने उन्हें क्षीण बना डाला। उनकी यह अवस्था देखकर सेनापति तथा अन्य विश्वासी अनुचर, जो इस विकट परिस्थिति में भी महाराज का साथ दे रहे थे, शोक से घुले जा रहे थे। जो एक दिन दोनों हाथ भर-भर कर भिक्षुओं को अशर्फियां दान दिया करता, उसके लिए आज एक कौड़ी भी न बची और यह सब केवल एक दुर्दान्त डाकू की दुष्टता के कारण। इसी कारण महाराज चन्द्रदीपसिंह 'खून के प्यासे' पर जी-जान से जले बैठे थे।

सेनापति ने महाराज को राय दी कि राज्य के धनी मानी सेठों को एकत्र करके दरबार किया जाए और उन सेठों से कुछ धन ऋण स्वरूप लेकर राजकाज चलाया जाए। पहले तो महाराज इस बात पर तैयार नहीं हुए परन्तु सेनापति के बहुत समझाने पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। पहले तो सेनापति ने अपने को मन्त्री घोषित किया क्योंकि पुराने मन्त्री के मर जाने से बड़ी अड़चन पड़ रही थी तत्पश्चात् उसने नगर के सेठ-साहूकारों को अपनी ओर से 'दरबारे-आम' में पधारने का सन्देश भेज दिया।

० ० ०

चोबदार ने आकर कहा—महाराज ! प्रेमनगर से एक दूत पत्र लेकर आया है। वह आप से इसी समय मिलने की अनुमति चाहता है।

मंत्री ने दूत को भेज देने का संकेत किया। थोड़ी देर में दूत आ गया। उसने महाराज और मंत्री को झुक कर अभिवादन किया। तत्पश्चात् मंत्री के हाथों पर एक बड़ा-सा लिफाफा रख दिया।

मंत्री ने लिफाफा फाड़कर पत्र निकाला और जोरों से पढ़ने लगे। उसमें यह लिखा था—

सोनपुराधीश !

आपका राज्य इस समय अव्यवस्थित है ! अतः मैं आपकी सहायता करना चाहता हूं। आप मुझसे पर्याप्त धन पा सकते हैं, यदि आप

मेरी अधीनता स्वीकार कर लें। अपना राज्य चलावें और निश्चित आय १४ 'कर-स्वरूप' मुझे दे दिया करें। याद रखिए! यदि इसके अनुसार कार्य न होगा तो हमारी सेना तिथि आश्विन शुक्ल १ को आपके राज्य पर आक्रमण कर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देगी। इत्यलम्

आपका--
'प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल'

पत्र पढ़ते ही सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। सोनपुर महाराज रसिकरसाल के आक्रमण की बात सुनकर सभी कांप उठे।

थोड़ी देर के बाद मन्त्री बोले—भाइयो! विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। हमारी हीनावस्था देखकर महाराज रसिकरसाल भी हम पर हाथ साफ करना चाहते हैं। उनका कहना है या तो हम उनकी अधीनता स्वीकार करें या रण का निमन्त्रण लें। परन्तु इस समय हमारे लिए दोनों ही बातें असम्भव हैं। न तो हम महाराज रसिकरसाल की अधीनता ही स्वीकार कर सकते हैं और न उनसे लोहा ही ले सकते हैं क्योंकि हमारे पास इतना धन भी नहीं है कि हम पर्याप्त सेना जुटाकर उनका सामना करें।

आप ही बताइए कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में क्या किया जाए?

सभा में सन्नाटा छा गया। परन्तु इतने में ही कहीं से एक भयंकर आवाज आई—मुझसे पूछो मन्त्रीवर! ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में क्या करना चाहिए?

इस आवाज को सुनकर सभी चौंक उठे क्योंकि यह आवाज किसी मनुष्य की नहीं मालूम होती थी। मन्त्री आदि ने चारों ओर देखा, परन्तु बोलने वाले का कुछ भी पता न चला।

मंत्री ने अपनी आवाज कुछ ऊंची करके कहा—यह कौन बोला!

आवाज आई—मैं बोला था मन्त्रीवर! क्या आप मुझे नहीं देख रहे हैं? इधर देखिए!···इधर! इस कोने में!

सबकी दृष्टि उस कोने की ओर गई। देखा—एक भयानक बनमानुष खड़ा था—दस फीट ऊंचा—भयानक दांतों वाला! मन्त्री ने अपना जी कड़ा करके पूछा—तुम कौन हो और क्या चाहते हो?

बनमानुष बोला—मैं आपका और आपके राज्य का रक्षक तथा महाराज रसिकरसाल का महान शत्रु—'गुरुघंटाल' हूं। आपकी सहायता करना चाहता हूं। मुझमें असीम शक्ति है। मैं चाहूं तो अकेला ही महाराज रसिकरसाल को परास्त कर सकता हूं। परन्तु मैं ऐसे छोटे-छोटे कामों में स्वयं हाथ नहीं डालता, वरन् अपने अनुचरों से

सारा काम लेता हूं। मेरे पास अगाध धन है। मैंने आपकी सहायतार्थ कुछ धन आपके खजाने में अभी-अभी रखवा दिया है। आप उस धन से सेना एकत्रित करके रसिकरसाल का सामना कर सकते हैं। इस समय आप मन्त्री का काम कर रहे हैं और सेनापति का स्थान खाली पड़ा हुआ है। मैं चाहता हूं कि इस लड़ाई में सेनापतित्व की बागडोर मेरे भेजे हुए आदमी को दी जाए। मैं नियत तिथि पर अपना एक विश्वस्त अनुचर आपके पास भेजूंगा। आप सैन्य-संचालन का सारा भार उस पर रखकर उसे सेनापति बना दीजिएगा। आपको जीत हो जाएगी। परन्तु जीत हो जाने पर आप रसिकरसाल के राज्य को अपने राज्य में मिला लेने का प्रयत्न न कीजिएगा और यदि लड़ाई में रसिकरसाल कैद कर लिया जाए, तो उसे मेरे आदमी के हवाले कर दीजिएगा।

और बोलते ही बोलते वह नरपिशाच न जाने कहां लुप्त हो गया। सभासद बोले—बनमानुष न जाने क्यों हमारी सहायता करना चाहता है? उसने कहा है कि आपके खजाने में पर्याप्त धन रखवा दिया है—इस बात का पता लगाना चाहिए।

मंत्री—हां! मैं भी यही देखना चाहता हूं कि उस बनमानुष का कहना कहां तक ठीक है। यदि वह वस्तुतः पर्याप्त धन हमारे खजाने में रख गया है, तो हमें मानना पड़ेगा कि वह हमारा परम हितैषी है। ऐसी अवस्था में हम उसके कथनानुसार अवश्य कार्य करेंगे।

इतना कहकर मन्त्री उठे और महाराज को साथ लेकर कोषगृह में आए। देखा आधी कोठरी चमचमाती हुई स्वर्ण मुद्राओं (अशर्फियों) से भरी है। मालूम पड़ता है कि जगत की सारी माया वहां उठकर चली आई है। महाराज तथा मन्त्री की आंखें ढप गईं। उनके खजाने का दुगुना धन उस कोठरी में था सब चमचमाती हुई अशर्फियां।

२२

चलिए पाठको! आज आपको 'खून के प्यासे' के गुप्त स्थान की सैर करा लावें। आजकल 'खून के प्यासे' की अवस्था बड़ी शोचनीय है। राजकुमारी कनकलता की चिन्ता तथा अपने अगाध धन के गायब हो जाने के कारण उसका मुखमण्डल सदैव चिन्ता निमग्न रहता है। पाठकों को मालूम होगा कि राजकुमार जंगबहादुर, कुमारी चन्द्रप्रभा 'जंगली' (चन्द्रशेखर) प्रेतात्मा तथा प्रेतराज आदि अभी तक 'खून के प्यासे' के गुप्त स्थान पर ही विराज रहे हैं। 'खून के प्यासे' ने जब

जब देखा कि अब उन लोगों का उसके यहां कुछ काम नहीं है, तो उसने सब लोगों को अपने घर चले जाने का आदेश देने का निश्चय किया और यही सोचकर उसने अपने शागिर्द रघुवंश से सब लोगों को बुला लेने को कहा।

यथासमय राजकुमार जंगबहादुर तथा कुमारी चन्द्रप्रभा उपस्थित हुए। 'खून के प्यासे' ने उनसे कहना प्रारम्भ किया—भाइयो! आज तक आपकी मैंने यथाशक्ति सेवा की। यदि मुझमें कोई त्रुटि हुई तो आप मुझे क्षमा करें। इस समय मैंने आप लोगों को इसलिए कष्ट दिया है कि अब आप लोग कृपा करके अपने-अपने घर चले जाइए अब यहां पर आपके रहने से कुछ भी लाभ नहीं है।

राजकुमार जंगबहादुर बोले—दुर्जयसिंह वास्तव में हम लोग भी यही चाहते थे परन्तु जाने के पहले हम तुमसे यह पूछना चाहते हैं कि आजकल तुम इतने दूर्बल क्यों हुए जा रहे हो? तुम्हारा मुखकमल एकदम सूख क्यों गया है?

'खून के प्यासे'—क्या कीजिएगा पूछकर राजकुमार! संसार में मेरे लिए सुख की सृष्टि ही नहीं हुई। बाल्यावस्था से ही मैं माता-पिता से बिछुड़ गया—वन में विकट दुख सहकर गुरुवर ने मुझे पाला-पोसा और ऐयारी सिखाई—तत्पश्चात् एक दुर्दान्त डाकू बनकर मैंने अगाध धन प्राप्त किया—यह सब कुछ हुआ, परन्तु विपत्ति ने मेरा पीछा न छोड़ा इधर आपकी बहन कुमारी कनकलता को प्रेम करने लग गया था, परन्तु मेरे कटु भाग्य से वह भी संसार में नहीं रही?

जंगबहादुर—दुर्जय! यह क्या कह रहे हो? क्या मेरी बहन अब इस संसार में नहीं रही?

'खून के प्यासे'—नहीं राजकुमार! आपके पिता जी ने क्रोध में आकर उसे चिता में भस्मीभूत कर डाला है। यह सब उस दुष्ट 'गुरु-घंटाल' के ही कारण हुआ। उफ! मैं कितना ही चाहता हूं कि इस भयानक वनमानुष को काल के घाट उतार दूं, परन्तु मेरी सारी चेष्टा विफल होती जा रही है।

प्रेतात्मा—दुर्जय! विपत्ति में धैर्य धारण करना ही तो वीरों की शोभा है। मैंने तुम्हें इतना चिन्तित तथा म्लान मुख कभी नहीं देखा था। तुम हमारे गुरु भाई हो। हम लोग बाल्यावस्था से ही साथ-साथ खेले हैं अतः तुम्हारा दुःख देखकर मुझे महान शोक हो रहा है।

जाने के पहले एक बात तुमसे कहना चाहते हैं, कि वह यह रूपवती के दुराचार की कथा तुम सुन ही चुके हो। राजकुमार राजेन्द्रसिंह,

जिन्हें उनके पिता आदि मरे हुए समझ रहे हैं अभी तक उस दुष्ट रूपवती की कैद में पड़े हुए दुःख भोग रहे हैं। तुम यथाशक्ति राजकुमार राजेन्द्र तथा अन्य कुमारों को छुड़ाने का प्रयत्न करना।

'खून का प्यासा'—भाई प्रेतात्मा! मैंने तुम्हारा कहना कभी नहीं टाला और आज भी न टालूंगा। यद्यपि महाराज चन्द्रदीपसिंह ने मेरा घोर अपमान किया है, तथापि मैं उनके पुत्र राजेन्द्रकुमार को अवश्य मुक्ति दिलाऊंगा और यदि हो सकेगा तो अन्य राजकुमारों को भी।

इसके बाद सब लोग दुर्जय से गले मिले और पुनः अपने-अपने घर की ओर चल पड़े।

'खून के प्यासे' ने अपने सब मेहमानों को विदा करके एक दीर्घनिश्वास ली। इतने में ही प्यारेलाल ने उस कमरे में प्रवेश किया। अपने गुरु को इस प्रकार चिन्तित देखकर पहले तो वह झिझका, परन्तु 'खून के प्यासे' के इशारा करने पर उसके पास आकर बैठ गया।

'खून के प्यासे' ने उससे पूछा—कहां से आ रहे हो प्यारेलाल ?

प्यारेलाल—इस समय सोनपुर से आ रहा हूं गुरुजी। प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल ने महाराज चन्द्रदीपसिंह पर आक्रमण करने का सन्देश भेजा है। आपका महान शत्रु 'गुरुघंटाल' महाराज चन्द्रदीपसिंह की सहायता कर रहा है और उसने अगाध धन महाराज को प्रदान किया है, तथा यह भी कहा है कि लड़ाई के लिए वह अपना एक आदमी भी भेजेगा, उसे ही सेनापतित्व की पदवी प्रदान की जाए और यदि युद्ध में महाराज रसिकरसाल कैद कर लिए जाएं, तो वे भी उसे ही दे दिए जाएं सुनने में आया है कि महाराज रसिकरसाल में और गुरुघंटाल में बहुत पुराना बैर है और इसी कारण वह सोनपुर के महाराज की सहायता कर रहा है। एक आश्चर्य की बात और है वह यह कि मैंने गुप्त रीति से जाकर वह सारा धन देखा है, जिसे 'गुरुघंटाल' ने महाराज चन्द्रदीपसिंह को प्रदान किया। वह सारा धन आप ही का है। सब अशर्फियां आप ही के खज़ाने की हैं।

'खून का प्यासा'—मेरे ही खजाने की हैं! तो क्या मेरी सारी अशर्फियां 'सोनपुर कोषगृह' से गायब कर देने वाला वही दुष्ट है? ओह! अब मेरी समझ में आया। मेरा सारा धन उसी ने हड़प लिया महाराज पर अपना प्रभाव जमाने के लिए उन्हें अपनी ओर से दे दिया था। उफ! उस दुष्ट ने मुझे बड़ा भारी धोखा दिया? उसी के कारण महाराज चन्द्रदीपसिंह का विश्वास मुझ पर से उठ गया। अब मैं उन्हें मुंह दिखाने योग्य भी न रहा। खैर! चाहे जैसे हो मैं उस दुष्ट को

अवश्य नीचा दिखाऊंगा। यदि यह महाराज चन्द्रदीपसिंह की सहायता कर रहा है,तो महाराज रसिकरसाल की मैं सहायता करूंगा यही मेरा विचार है। अपने शत्रु 'गुरुघंटाल' से बदला लेने का यही सबसे अच्छा अवसर है तुम जाओ सब तैयारी करो। मैं महाराज रसिक-रसाल की पूर्णतया सहायता करूंगा।...लेकिन अभी-अभी मैं जरा रूपनगर जाना चाहता हूं। वहां जाकर राजकुमार राजेन्द्रकुमार को छुड़ाने का प्रयत्न करूंगा।

प्यारेलाल चला गया तो 'खून के प्यासे' ने काला लबादा पहना, छुरों वाली पेटी कमर में बांधी तथा मुंह पर काली नकाब लगा ली, वही भयंकर नकाब !

२३

जब से महारानी रूपवती 'खून के प्यासे' का असली रूप उस पीतल की मूर्ति की हथेली पर देखा—तभी से वह अपनी सुध-बुध खो बैठी। उसके नेत्रों के सामने सदैव 'खून के प्यासे' का मन मोहक रूप नाचता रहता था। वह 'खून के प्यासे' को पाना चाहती थी और उससे अतृप्त हृदय को तृप्ति करना चाहती थी। इस क्षणिक सुख के लिए वह अपने राज्य का भी नाश कर देने को तैयार थी। वही राज्य—जिसे उसके पुरखाओं ने अटूट प्रयत्न करके इतना हरा-भरा बनाया था।

दिन के चार बज गए हैं। हेमन्त ऋतु की मीठी-मीठी शरदी पड़ रही है। रूपवती उसी पीतल की मूर्ति वाले कमरे में बैठकर 'खून के प्यासे' के विषय में कुछ सोच रही है ? वह सोच रही है—'खून का प्यासा' तो मुझे पहले से प्यार करता था, परन्तु मैंने ही अज्ञानतावश उसे ठुकरा दिया था और इसलिए मुझे अपनी सखी चन्द्रकला से भी हाथ धोना पड़ा। आह ! यदि मैं जानती होती तो वह भयंकर डाकू इतना सुन्दर है, तो कभी ऐसी भीषण भूल न करती।...और मूर्ति का यह कहना है कि 'खून के प्यासे' के कारण राज्य का नाश हो जाएगा—आज न जाने क्यों मेरा मन अस्थिर है। चलूं ज़रा उन राजकुमारों को, जिन्हें मैंने रूपगढ़ी में बन्द कर रखा है—देख आऊं। कुछ जी बहलेगा—

रूपवती उठकर खड़ी हो गई और गुप्त दरवाज़े की राह उस सुरंग में आ गई, सुरंग के दोनों किनारों पर ऊंचे-ऊंचे जंगले बने हुए थे, जिसमें से प्रत्येक जंगले में दो बड़ी-बड़ी आंखें रूपवती की ओर ताक रही थीं ! अभागे राजकुमार इस विषैली नागिन को घूर-घूरकर देख

रहे थे। रूपवती सुरंग में से आगे बढ़ने लगी। वह प्रत्येक जंगले के पास कुछ देर ठहरकर कैदी से कुछ बातें भी करती जाती थी। वह किसी जंगले के पास जाती तो उसमें दीन-हीन कैदी, उससे हाथ जोड़कर—घुटने टेककर—अपने छुटकारे की प्रार्थना करने लगता और रूपवती घृणापूर्वक मुंह फेर तथा उस अभागे कैदी के ऊपर थूककर दूसरे जंगले के पास चली जाती।

इसी प्रकार रूपवती प्रायः सभी जंगलों के पास घूम आई और अन्त में एक मरणासन्न कैदी की कोठरी के सामने आकर खड़ी हो गई। उसने जंगले से झांक कर भीतर की ओर देखा। एक दुबला-पतला नवयुवक उसमें बन्द था।

अपनी कोठरी के सामने रूपवती को खड़ी देखकर वह युवक कैदी उठकर खड़ा हो गया और बोला—रूपवती! तुम आ गईं! मैं तुम्हें अभी तक नहीं भूला हूं और न कभी भूल सकता हूं। क्या हम दोनों विवाह करके सुखी नहीं हो सकते? मैं दिन-रात तुम्हारी ही बाट जोहता रहता हूं, सुनो—

उस युवक कैदी की बातें सुनकर रूपवती ठठाकर हंसी, पुनः बोली, राजकुमार राजेन्द्रसिंह तुम विवाह की बात कर रहे हो और वहां तुम्हारे पिता पर घोर आपत्ति आ पड़ी है। 'खून के प्यासे' ने तुम्हारे राज्य का खजाना लूट लिया था, और अब प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल ने तुम्हारे राज्य पर चढ़ाई कर दी है। तुम्हारा विशाल राज्य नष्ट होना चाहता है।

कैदी—क्या कहा? क्या यह सत्य है?

रूपवती—अक्षरशः सत्य।

कैदी—रूपवती प्रेम की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि यदि इस समय मुझे छोड़ दोगी, तो मैं अपने राज्य का कष्ट निवारण करके पुनः तुम्हारे पास आ जाऊंगा तब तुम मुझे फिर कैद कर लेना। इस समय तुम मुझे अवश्य छोड़ दो मैं स्वदेश की रक्षा करना चाहता हूं।

रूपवती—क्यों? अब प्रेम की डींग हवा हो गई और स्वदेश की रक्षा का प्रश्न आ खड़ा हुआ।

कैदी—नहीं रूपवती! स्वदेश का प्रेम, वासनामय से प्रबल होता है। मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि तुम मुझे स्वतंत्र कर दो।

रूपवती—राजेन्द्र! तुम स्वतन्त्र होना चाहते हो? अच्छा! तुम्हें मैं अभी स्वतन्त्र कर देती हूं।

इतना कहकर रूपवती ने बगल में लगे हुए किसी खटके को दबाया। खटका दबते ही कोठरी के फर्श में दो इंच लम्बी कीलें निकल आईं। सारा फर्श कीलों से भर गया। वह कैदी इधर से उधर दौड़ने लगा। कहीं तिल रखने को भी स्थान न था। चारों ओर नुकीली कीलें बिछी थीं, जिन पर पांव पड़ते ही उस अभागे कैदी के पैरों से रक्त की धारा बहने लगी। कैदी चीख उठा---रूपवती ! दया करो, क्षमा करो। मैं स्वतन्त्रता नहीं चाहता। तुम अपनी इन कीलों को पुनः ठिकाने लगा दो। अब मैं कभी तुमसे स्वतन्त्रता की---तथा प्रेम की---भीख न मांगूंगा। दया करो रूपवती। मुझ अभागे पर दया करो।

रूपवती ने पुनः कोई खटका दबा दिया और वे नुकीली कीलें जमीन के भीतर घुसकर लुप्त हो गईं। रूपवती एक क्रूरता की हंसी हंस दी और आगे बढ़ गई।

उस समय उसके चेहरे पर पैशाचिकता खेल रही थी।

• • •

जब रूपवती कैदियों से अपना जी बहलाकर वापस लौटकर शयनागार में आई तो यह देखकर उसके आश्चर्य का पारावार न रहा कि कोई काली शक्ल उसके शयनागार में इधर से उधर टहल रही है। लम्बा कद, विशाल बाहु तथा कमर से लटकते हुए सैकड़ों छुरे। रूपवती ने दरवाजे के पास से इस काली शक्ल को देखा और तुरन्त ही पहचान भी लिया। भला जिसकी मूर्ति वह सदैव अपने हृदय-पट पर, अंकित किए रहती थी उसी 'खून के प्यासे' को वह क्यों न पहचानेगी।

कमरे में प्रविष्ट होकर वह प्रसन्नतापूर्वक बोली---कौन ? 'खून का प्यासा'।

'खून का प्यासा' उसकी बात पर घूम पड़ा। नकाब के भीतर से जलती हुई अंगारमयी आंखें रूपवती के मुख पर गड़ाकर वह बोला---रूपवती ! मैंने सुना है कि तुमने बहुत से राजकुमारों को कैद कर रखा है और उनमें सोनपुराधीश के बेटे राजकुमार राजेन्द्रसिंह भी हैं। मैं उन्हीं को लेने आया हूं। यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक राजेन्द्र को मेरे हाथों सौंप दो, तो मैं चुपचाप यहां से चला जाऊंगा, अन्यथा सभी राजकुमारों को छुड़वाकर तभी दम लूंगा। अतः तुम्हारे लिए अच्छा है कि तुम शीघ्र राजकुमार को मेरे साथ कर दो।

रूपवती---! मैं राजकुमार राजेन्द्र को स्वतन्त्र कर सकती हूं, मगर एक शर्त पर।

'खून का प्यासा'---कौन-सी शर्त पर ?

रूपवती---यही कि तुम मेरे प्रेमी बन जाओ।

'खून का प्यासा'---रूपवती ! प्रेम मानवी हृदय से किया जाता है, दानवी से नहीं। मैं जान-बूझकर तुम जैसी नागिन को दूध नहीं पिलाऊंगा ? जिस प्रकार तुमने इतने राजकुमारों को अपने यहां कैद कर रखा है क्या वही व्यवहार मेरे साथ भी नहीं करोगी।

रूपवती---नहीं-नहीं तुम्हारी धारणा गलत है। मैं तुमको हृदय से चाहती हूं अब तुमको यहां से कभी न जाने दूंगी।

'खून का प्यासा'---रूपवती ! मैं यहां तुम्हारी प्रेमपुकार सुनने नहीं आया हूं---मैं आया हूं, कर्तव्यपरायणता से प्रेरित होकर। अतः शीघ्र राजेन्द्र को मेरे हवाले करके व्यर्थ की परेशानी से बच जाओ।

रूपवती---यदि तुम चाहो तो मैं राजेन्द्र को तुम्हारे हवाले कर सकती हूं। परन्तु तुम चाहते ही नहीं। अगर तुम मेरी प्रेमभिक्षा स्वीकार कर लो···।

'खून का प्यासा'---क्यों बार-बार प्रेम की भीख मांग रही हो ? तुम में अब इतना परिवर्तन क्यों हो गया ? पहले तो तुम मुझसे घृणा करती थीं न ?···और कहा करती थीं कि मैं जानवर हूं, खूंखार हूं, कुरूप बुड्ढा हूं ! लो जरा इस कुरूप बुड्ढे की सूरत भी देख लो।

'खून के प्यासे' की बातें सुनकर रूपवती क्रोध से कांपने लगी। ओह ! आज तक उसका इतना अपमान किसी ने नहीं किया था। वह गरज कर बोली--- खून के प्यासे' ! तुमने मेरा अपमान किया है---मैं इसका बदला लूंगी। तुम नहीं जानते मुझमें कितनी शक्ति है।

'खून का प्यासा' बोला---रूपवती ! मैं तुम्हें समझाने आया था, ताकि बिना किसी खून-खराबी के ही मेरा काम हो जाए, परन्तु मैं देख रहा हूं कि तुम सीधी तरह से कभी न मानोगी। अच्छा ! मैं इस समय जा रहा हूं मैं इस समय सोनपुर की लड़ाई में फंसा हूं। उधर से छुट्टी पाते ही पुनः तुम्हारे पास उपस्थित होऊंगा और देखूंगा कि किस प्रकार तुम राजेन्द्र को नहीं छोड़तीं।

इतना कहकर 'खून का प्यासा' तेजी से उस कमरे के बाहर चला गया। उसके जाते ही रूपवती सिर थामकर पलंग पर बैठ गई और अपनी वर्तमान अवस्था का चिन्तन करने लगी ! जितना ही वह 'खून के प्यासे' की ओर से अपना चित्त हटाना चाहती थी, उतना ही वह उसकी ओर आकर्षित होना चाहता था।

---हाय री वासना !

° ° °

एक सजे-सजाए कमरे में एक सुन्दर पलंग पर विजयसिंह बैठा है। उसके सामने ही एक कुर्सी पर उसका ऐयार रज्जन भी बैठा है। दोनों में बहुत देर से कुछ गुप्त परामर्श हो रहा है। विजयसिंह की किसी बात के उत्तर में रज्जन ने कहा—नहीं सरकार ! मुझे पूरा पता है कि 'खून का प्यासा' यह जान गया है कि आप ही ने सोनपुर के कोषगृह से उसका सारा धन गायब कर दिया था। वह यह भी जानता है कि आपने वही धन सोनपुर के महाराज को अपनी ओर से दिया है। वह यह भी जान चुका है कि आप लड़ाई में अपनी ओर से कोई आदमी भेजेंगे और वह आदमी सोनपुर की सेना का संचालन करेगा। यही सब जानकर 'खून के प्यासे' ने आपके विरुद्ध, महाराज रसिकरसाल की सहायता करने का निश्चय कर लिया है। क्योंकि आपसे तो वह जला-भुना है ही, अब महाराज चन्द्रदीपसिंह से भी क्रोधित हो उठा है, क्योंकि उन्होंने उसका अपमान किया था। एक बात और है। वह यह कि 'खून का प्यासा' महाराज चन्द्रदीपसिंह के पुत्र कुमार राजेन्द्रसिंह को छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा है।

विजय—क्या महाराज चन्द्रदीपसिंह का कोई पुत्र भी है।

रज्जन—जी हां ! उसके पुत्र का नाम है कुमार राजेन्द्रसिंह। आज से तीन-चार वर्ष पहले उन्हें किसी ने कैद कर लिया था। इधर सुनने में आया है कि 'खून के प्यासे' को उसका पता मालूम हो गया है और छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि वह महाराज रसिकरसाल की ओर से युद्ध-भूमि में पदार्पण करेगा। इस प्रकार वह महाराज चन्द्रदीपसिंह का शत्रु हुआ और इधर राजेन्द्रसिंह को छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा है, इस प्रकार वह उनका मित्र भी है।

विजय—रज्जन ! सच तो यह है कि पहले 'खून का प्यासा' महाराज चन्द्रदीपसिंह की सहायता करना चाहता था और इसलिए उसने धन राज्य-कोष में रखवा दिया था, परन्तु महाराज द्वारा अपमानित हुआ। बाद को यह जानकर कि मैं उसकी सहायता कर रहा हूं, महाराज रसिकरसाल को सहायता करने पर उतारू हुआ है ! इस परिस्थिति में कोई भी मनुष्य ऐसा ही करता है।

२४

गुरुघंटाल के दिए हुए अगाध धन द्वारा सोनपुर राज्य का कार्य पुनः सुचारु रूप से चलने लगा। सेना आदि जो तितर-बितर हो गई थी पुनः

संगठित हो गई। महाराज चन्द्रदीप का शोक सन्ताप सब दूर हो गया। वे पूर्णतः धर्मपरायणता में तल्लीन हो गए। राज्य की सारी सेना को नये मन्त्री ने (जो पहले सेनापति थे, वही अब मन्त्री हो गए थे) लड़ाई की पूर्ण तैयारी करने की आज्ञा दे दी। चारों ओर स्फूर्ति दीख पड़ने लगी। सभी लड़ाई में भाग लेने को उत्सुक थे। एक अन्यायी राजा से अपने राज्य की रक्षा करने के लिए सभी उत्सुक थे।

सोनपुर राज्य के वर्तमान मन्त्री की यह राय थी कि लड़ाई के लिए अपनी ओर से भी एक सेनापति चुन लें, ताकि गुरुघंटाल के आदमी के न आने पर वही सैन्य संचालन करे। परन्तु महाराज इस राय से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि गुरुघंटाल अपना आदमी अवश्य भेजेगा और वह मनुष्य अपने में इतनी योग्यता रखता होगा कि वह हमारी सेना को अतीव कौशल द्वारा संचालित कर सके। गुरुघंटाल के कथनानुसार महाराज चन्द्रदीपसिंह ने युद्ध की सारी तैयारियां प्रारम्भ कर दी थीं और प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल को युद्ध की सूचना भी भेज दी थी।

आज महाराज चन्द्रदीपसिंह का 'दरबार आम' बहुत ठाट-बाट से लगा है। अमीर-उमराव तथा राज्य के गण्यमान पदाधिकारी सब आसनों पर विराजमान हैं। आज का 'दरबार आम' युद्ध सम्बन्धी कुछ बातों पर विचार करने के लिए हुआ है। थोड़ी देर में दरबार में एक लम्बे कद के सुन्दर सैनिक ने प्रवेश किया। उस सैनिक का पहनावा विचित्र ही था, लेकिन उसकी सुन्दरता अद्वितीय थी। उस सैनिक की आयु लगभग छब्बीस वर्ष की थी। उसकी कमर से दो लम्बी तलवारें लटक रही थीं तथा उसके हाथ में एक लम्बा-सा नेजा था।

उस सैनिक के दरबार में प्रवेश करते ही, सबकी आंखें उसकी ओर उठ गईं। उसकी विचित्र पोशाक तथा अद्वितीय सुन्दरता देखकर लोग दंग रह गए।

सैनिक ने जाकर महाराज चन्द्रदीपसिंह को नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। और बोला—

महाराज! मैं गुरुघंटाल का अनुचर हूं। उनकी आज्ञा है कि मैं आपकी सेना का यथाविधि संचालन कर, आपको विजय की माला पहनाऊं और यदि रसिकरसाल कैद कर लिया जाए तो अपने साथ ही ले जाकर अपने स्वामी के चरणों में डाल दूं।

महाराज—सैनिक! मैं तुम्हारे स्वामी गुरुघंटाल से अतीव प्रसन्न हूं। मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें सेनापतित्व प्रदान करता हूं। परन्तु तुमने

अपना नाम नहीं बताया।

सैनिक—महाराज ! मेरा नाम विजयसिंह है।

महाराज—अच्छा तो विजयसिंह ! अब शीघ्र युद्ध का प्रबन्ध करो और इसी समय सीमा की ओर कूच कर दो। रसिकरसाल की सेना से सीमा पर ही मुठभेड़ करना ठीक होगा।

सोनपुर की सारी सेना विजयसिंह की अध्यक्षता में शीघ्र ही सीमा पर पहुंच गई। उस समय रसिकरसाल की सेना वहां तक नहीं पहुंची थी। विजयसिंह ने सैनिकों को खेमा आदि गाड़ने की आज्ञा दे दी। उसकी आज्ञा से शीघ्र ही पड़ाव पड़ गया। दो घण्टे के बाद रसिकरसाल की भी सारी सेना आ पहुंची, परन्तु जब रसिकरसाल ने देखा कि हमारा मुकाबला करने को हमारे विपक्षी की सेना भी उपस्थित है, तो उसने अपनी सेना को एक कोस हटकर पड़ाव डालने की आज्ञा दी।

• • •

विजय ! मुझे बाध्य होकर तुमसे शत्रुता करनी पड़ेगी, क्योंकि मैं इस लड़ाई में महाराज रसिकरसाल की सहायता कर रहा हूं।

विजय—दुर्जय ! तुम जैसा कर्तव्यपरायण आदमी भी अन्याय का पक्ष ले रहा है।

'खून का प्यासा'—विजय तुम नहीं जानते कि तुम्हारे स्वामी गुरुघंटाल ने मेरा कितना अनादर कराया है इस बात को मैं कभी नहीं भूल सकता। इसलिए मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं कि तुम इस लड़ाई से हाथ खींच लो क्योंकि मैं महाराज रसिकरसाल की जीत के लिए अपनी सारी शक्तियों का उपयोग करूंगा, चाहे उसके लिए मुझे तुम्हारी जान भी लेनी पड़े।

विजय—दुर्जय ! तुम मुझसे अपने स्वामी के कार्य से विमुख करना चाहते हो ? छिः-छिः मैं ऐसा कृतघ्न नहीं हूं। मैं इस लड़ाई में पूर्णतया सहयोग दूंगा और महाराज चन्द्रदीपसिंह की विजय के लिए प्रयत्न करूंगा।

'खून का प्यासा'—विजय ! मालूम हो गया कि तुम भी अपने स्वामी गुरुघंटाल की तरह मुझसे शत्रुता करना चाहते हो। खैर, आज से तुम मेरे मित्र नहीं शत्रु हो।

• • •

ऐसा नहीं है कि मैं 'खून के प्यासे' से डरता हूं, फिर भी मुझे उसे अपने मार्ग से दूर करना ही होगा। यदि वह समर-भूमि में उपस्थित रहेगा, तो मेरी जीत होने में आशंका रहेगी क्योंकि 'खून का प्यासा'

मेरा प्रबल शत्रु है। उसकी शक्ति भी अतुलनीय है। लेकिन 'खून के प्यासे' को अपने रास्ते से दूर हटाने का मेरे पास यदि और कोई साधन होगा, तो प्रेत-साधन योग सिद्धि के यन्त्र-तंत्रों द्वारा ही 'खून के प्यासे' को समर-भूमि से दूर हटाने का प्रबन्ध करूंगा। इस समय रात्रि के बारह बज गए हैं यदि मैं तेज घोड़े पर सवार हो अब जाऊं तो लगभग घण्टे भर में घर पहुंच जाऊंगा और प्रेत-साधना की उचित क्रियाएं करके प्रातःकाल होने के दो घण्टे पहले ही लौट आऊंगा।

इतना कहकर विजयसिंह पलंग से उठ खड़ा हुआ। अपनी पोशाक पहनकर खेमे से बाहर आ गया। उस ओर बढ़ा, जिधर महाराज चन्द्रदीपसिंह का ऊंचा खेमा दिखाई पड़ रहा था। उस खेमे के दरवाजे पर भी दो प्रहरी पहरा दे रहे थे।

विजय को देखकर दोनों ने अदब के साथ सिर झुकाया। विजयसिंह ने उनसे कहा—प्रहरी! महाराज को खबर दो कि सेनापति उनसे इसी समय मिलना चाहते हैं।

एक प्रहरी तुरन्त ही महाराज के खेमे में घुस गया। उस समय महाराज चन्द्रदीपसिंह प्रगाढ़ निन्द्रा में मग्न थे। प्रहरी ने उन्हें धीमे से जगाया और कहा—महाराज! सेनापति विजयसिंह इसी समय किसी कार्यवश आपसे मिलना चाहते हैं।

महाराज ने कहा—भेज दो।

प्रहरी तुरन्त बाहर चला गया और विजयसिंह को अन्दर आने का संकेत किया। विजय शीघ्र ही महाराज के सामने जा उपस्थित हुआ। महाराज ने पूछा—क्या है सेनापति? किस कार्य से इतनी रात को आए हो।

विजय—महाराज! 'खून का प्यासा' महाराज रसिकरसाल की ओर से रणभूमि में आएगा और आपके विरुद्ध लड़ेगा।

महाराज—ऐसी बात?

विजय—जी महाराज! उस दुष्ट के कला-कौशल तथा हस्त-लाघव को आप जानते ही हैं। यदि वह युद्ध स्थल में उपस्थित रहेगा, तो लड़ाई में हमारी जीत की सम्भावना न रहेगी।

महाराज—तब?

विजय—मैं उसे युद्ध स्थल से दूर हटा देना चाहता हूं, वह युद्ध में भाग न ले सके। लेकिन यह कार्य जरा कठिन है। इसके लिए मुझे अपने स्वामी 'गुरुघंटाल' से भेंट करना आवश्यक है। बिना उनकी सहायता के मैं कुछ भी नहीं कर सकता। अतः मैं इसी समय एक तेज घोड़े पर

सवार होकर अपने स्वामी के पास आऊंगा और प्रातःकाल होने के पहले ही लौट आऊंगा।

विजयसिंह खेमे के बाहर हो गया और घुड़सवार से एक तेज घोड़ा लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा।

२५

जिस स्थान पर सोनपुर की सेना का पड़ाव था, उससे एक कोस उत्तर की ओर महाराज रसिकरसाल की सेना ने पड़ाव डाला था। रात्रि के दो बज गए हैं। प्रेमनगर की सारी सेना आराम की नींद में मस्त है। महाराज रसिकरसाल अपने खेमे में मखमल के गलीचे पर तकिए के सहारे लेटे हुए अपने विश्वास ऐयार प्रीतम से बातें कर रहे हैं।

महाराज—क्या तुम्हें पक्का विश्वास है कि सोनपुर की सेना का सेनापति वही विजयसिंह है।

प्रीतम—जी महाराज! उसने महाराज चन्द्रदीपसिंह को अपना नाम विजयसिंह ही बतलाया है और जहां तक मुझे विश्वास है—यह विजयसिंह अवश्य वही है, जिसे आप समझ रहे हैं। मैंने गुप्तरीति से विजयसिंह की हथेली देख ली। उसकी हथेली पर वही चक्रादार गुदना गुदा हुआ है जैसा कि आप कह चुके हैं।

महाराज—क्या करूं? कुछ समझ नहीं आता। लोक-लज्जा से अब पीछे लौट चलने में भी असमर्थ हूं।

महाराज तथा प्रीतम में इसी प्रकार की बातें हो रही थीं कि इतने में ही हाथ भर लम्बा एक लपलपाता छुरा आकर महाराज के सामने जमीन में गढ़ गया। उस छुरे के दस्ते में एक कागज बंधा हुआ था। महाराज ने वह कागज खोल लिया उसमें लिखा था—

महाराज रसिकरसाल!

आपमें और मुझमें, राजकुमारी कनकलता के लिए, कुछ मनमुटाव हो गया था, परन्तु अब तो राजकुमारी इस संसार में रही ही नहीं। अतः अब हमें अपने मनमुटाव को दूर करके मित्र हो जाना चाहिए। मैं जानता हूं कि इस समय आपके प्राणों पर संकट आ पड़ा है और आप इस संकट से कभी नहीं बच सकते, यदि मैं आपकी सहायता न करूं। अतः आप मेरी सहायता ग्रहण करें और मुझे भी समरांगण में प्रवेश कर, अपने दुधारा की रक्त पिपासा शान्त करने की आज्ञा दें।

याद रखिए ! इनकार करने पर मैं भी आपका शत्रु हो जाऊंगा और यदि आपने मेरी बात स्वीकार कर ली, तो मैं आपकी रक्षार्थ अपना सब कुछ निछावर कर दूंगा।

—'खून का प्यासा'

पत्र पढ़कर महाराज बोले— यह तो 'खून के प्यासे' का पत्र है !

कुछ रुककर 'खून का प्यासा' महाराज के पास तक चला आया और झुककर महाराज को अभिवादन किया। महाराज ने उसे अपने पलंग पर बैठा लिया और बोले— 'खून के प्यासे'! क्या तुम वस्तुतः मेरी सहायता करना चाहते हो ?

'खून का प्यासा'— हां महाराज ! मैं प्राणप्रण से आपका साथ दूंगा। आपकी रक्षार्थ अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दूंगा।

महाराज— 'खून के प्यासे' ! तुम्हें अपना सहायक स्वीकार करता हूं। याद रखना कि मेरी विजय-पराजय तुम्हारे हाथ है ! ऐसा करना कि वह दुष्ट विजयसिंह मेरे पंजे में आ जाए और मैं उसे निर्दयतापूर्वक मसलकर अपनी छाती ठंडी करूं।

'खून का प्यासा'— ऐसा ही होगा महाराज ! आप धैर्य रखें।

० ० ०

नन्दन वन के उस विचित्र कुएं पर जिसमें जंगली रहा करता था आज हम फिर दो मनुष्यों को बैठा देख रहे हैं, जिनका नाम रज्जन और रतन हैं। ये दोनों गुरुघंटाल के ऐयार हैं और बहुत दिनों से उनका कार्य करते आ रहे हैं।

अचानक रज्जन की निगाह सामने की पगडंडी की ओर चली गई। उसने देखा कि एक घुड़सवार तेजी के साथ उसी कुएं की ओर बढ़ा आ रहा है। रज्जन ने उस घुड़सवार की ओर उंगली उठाकर कहा— रतन ! जरा दूरबीन से उस सवार को पहचानने की कोशिश तो करो।

रतन ने उसी समय एक छोटी-सी दूरबीन निकाली और उसे आंखों पर लगाकर उस घुड़सवार की ओर देखा और साथ ही चिल्ला उठा— अरे ! यह तो रघुवंश है, 'खून के प्यासे' का शागिर्द।

रज्जन— तब तो इसे अवश्य पकड़ना चाहिए। इससे बहुत काम निकलेगा। चलो ! जल्दी कहीं छिप जाएं।

इतना कहकर दोनों ने अपना सामान उठा लिया और न जाने किधर चले गए। आने वाला सवार रघुवंश ही था जो बड़ी बेफिक्री के साथ आकर उस कुएं पर बैठ गया और आराम करने लगा। अभी उसे कुएं पर बैठे कुछ ही देर हुई थी कि उसने सामने की ओर दो नकाब-

नकाबपोशों को देखा, जो पैदल ही तेजी के साथ उसकी ओर चले आ रहे थे। रघुवंश अभी सोच ही रहा था कि ये सिद्ध हैं, या शत्रु कि इतने में वे नकाबपोश आ गए और उसमें से एक ने रघुवंश को अदब के साथ झुककर सलाम किया और पूछा—क्या आप ही का नाम रघुवंश है ?

रघुवंश—हां मैं ही रघुवंश हूं। क्यों ? क्या काम है।

नकाबपोश—क्या आप अपने गुरु की प्रेमिका को जानते हैं? वही प्रेमिका, जिसके लिए आपके गुरु दिन-रात तड़पा करते हैं।

रघुवंश—क्या तुम्हारा मतलब कनकलता से है।

नकाबपोश—जी हां ? आपने ठीक समझा। कुमारी अभी तक जीवित है। एक दुष्ट की कैद में पड़ी हुई दुःख भोग रही है।

यह बात सुनकर रघुवंश चौंकपड़ा। उसे स्वप्न में भी यह विश्वा न था कि कुमारी कनकलता अभी तक जीवित है। नकाबपोश के मुंह से राजकुमारी का जीवित होना सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा यदि मैं राजकुमारी कनकलता को उस दुष्ट से मुक्त कर दूं तो गुरु जी मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे और साथ ही साथ उनका शोक-सन्ताप भी दूर हो जाएगा। यही सोचकर उसने उन नकाबपोशों से कहा—क्या तुम सच कह रहे हो ?

नकाबपोश—भला आपसे झूठ कहने से लाभ ? आप सच जानिए। राजकुमारी अभी तक जीवित है और आपके गुरु के महान शत्रु गुरु-घंटाल की कैद में है।

रघुवंश—गुरुघंटाल की कैद में ?

नकाबपोश—जी हां ? फिर भी उसका छुड़ाना बड़ा ही सरल है, क्योंकि मैं वह स्थान देख चुका हूं, जहां राजकुमारी कैद है ! यदि आप इसी समय मेरे साथ चलें, तो मैं आपको गुरुघंटाल के निवास स्थान पर निर्विघ्न पहुंचा दूंगा और आपको वह स्थान भी दिखा दूंगा जहां राज-कुमारी कैद है, इस समय बड़ा ही अच्छा मौका है, क्योंकि गुरुघंटाल सोनपुर की लड़ाई में फंसा हुआ है और उनके दोनों अनुचर रज्जन तथा रतन अभी-अभी यहीं बैठे थे। आपको आता हुआ देखकर कहीं चले गए हैं। अतः शीघ्र ही यहां से चलिए, नहीं तो दोनों के आ जाने से हमारे कार्य में विघ्न पड़ेगा।

रघुवंश—मैं चलने को तैयार हूं, परन्तु यह तो बताओ कि तुम लोग कौन हो ?

नकाबपोश—हम लोग अपना परिचय अभी नहीं देंगे, फिर

मैं इतना कहे देता हूं कि आप हम लोगों पर अविश्वास करें। हम आपके हितैषी हैं।

रघुवंश—तुम हमारे गुरु के मित्र हो ? तो क्या तुम दोनों आदमी मेरे गुरु के भाई—प्रेतात्मा और चन्द्रशेखर हो ?

रघुवंश की यह बात सुनकर दोनों नकाबपोश न जाने क्यों चौंक पड़े। उनका चौंकना रघुवंश ने भी देख लिया और वह तुरन्त समझ गया कि वे दोनों अवश्य ही प्रेतात्मा तथा चन्द्रशेखर हैं, इसीलिए यह चौंके हैं—वे दोनों गुप्त रीति से अभी तक हमारे गुरु की सहायता कर रहे हैं—यही सोचकर रघुवंश ने कहा—अच्छा चलो मैं तुम लोगों के साथ चलता हूं।

कुछ दूर चलते रहने के बाद एक लम्बी-सी सुरंग मिली ! इसी सुरंग से तीनों आदमी चलने लगे। अन्धेरे के कारण ये लोग तेजी से नहीं चल रहे थे। लगभग दो कोस चले जाने पर फिर सीढ़ियों का सिलसिला, परन्तु ये सीढ़ियां नीचे उतरने की नहीं वरन् ऊपर चढ़ने की थीं। यहां पर आकर एक नकाबपोश ने कहा—सावधान रहिए। अब आपको हम लोग राजकुमारी कनकलता को दिखाना चाहते हैं। देखिए इस मोखे की तरफ।

पश्चिम की ओर दीवाल में एक चौड़ा मोखा दिखाई पड़ रहा था। रघुवंश ने उसी मोखे में सिर डालकर दूसरी ओर का दृश्य देखा। एक हरा-भरा बगीचा था जिसमें एक संगमरमर की चौकी पर बैठी हुई राजकुमारी कनकलता आंसू बहा रही थी। यहां राजकुमारी को जीवित देखकर रघुवंश को जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है।

नकाबपोश ने उससे कहा—देख लिया आपने ? अब तो हम पर आपका पूर्ण विश्वास हुआ ? अच्छा आइए ! अब आपको वहां का रास्ता भी दिखा दें।

इतना कहकर दोनों नकाबपोश रघुवंश को लेकर दक्खिन की ओर मुड़े और शीघ्र ही एक बृहत कमरे में पहुंच गए। चारों ओर की दीवालों में बनी हुई पचीसों आलमारियां दिखाई पड़ रही थीं। एक नकाबपोश ने रघुवंश को ले जाकर एक आलमारी के पास खड़ा कर दिया और आप कुछ दूर हट गया। दूसरे नकाबपोश ने आगे बढ़कर कोई पेंच ऐंठा। तुरन्त ही उस आलमारी का पल्ला, जिसके सामने रघुवंश खड़ा था उसमें से हवा का खिचाव उत्पन्न हुआ कि रघुनाथ अपने आपको सम्हाल न सका और हवा के साथ ही वह खिचकर आलमारी के भीतर चला गया। और आलमारी के पल्ले अपने आप बन्द हो गए।

रघुवंश की यह हालत देखकर दोनों नकाबपोश खिलखिलाकर हंस पड़े, एक बोला—कैसे फंसाया बच्चा जी को। अपने को बड़ा भारी ऐयार समझता था।

० ० ०

विजय धम्म से आराम कुर्सी पर बैठ गया और बोला—मां सच कहता हूं। लड़ाई का रुख बड़ा ही भयंकर प्रतीत हो रहा है। अब तक तो मुझे इस बात पर जरा भी विश्वास नहीं था कि 'खून का प्यासा' महाराज रसिकरसाल की सहायता करेगा परन्तु आज खून का प्यासा स्वयं सोनपुर के शिविर में आकर मुझसे कह गया है कि वह अवश्य रसिकरसाल की रक्षा करेगा। यह मेरे लिए बड़ी भयंकर बात है। गुरुघंटाल की वरदी पहनकर मैं उसका भली प्रकार सामना कर सकता हूं, परन्तु अपने असली रूप में मैं उसे कभी नहीं जीत सकता क्योंकि उसके विचित्र छुरे गजब ढाने की शक्ति रखते हैं। इसके अतिरिक्त उसके पास दो हाथ लम्बा एक और छुरा है। वह ब्रह्मशक्ति के समान शक्तिशाली है। उसके चलाने से मनुष्य कभी बच नहीं सकता। यदि मैं युद्ध में गुरुघंटाल के रूप में जाऊं तो निश्चय 'खून के प्यासे' के मुकाबले में खड़ा हो सकता हूं, परन्तु मैं ऐसा नहीं करना चाहता। मैं अपने असली रूप में ही रणभूमि में जाना चाहता हूं।

अपनी जीत के लिए मुझे 'खून के प्यासे' को रणभूमि से दूर हटाना ही पड़ेगा। इसी कार्य के लिए मैं यहां पर आया हूं। मैं ऐसा यत्न करना चाहता हूं जिससे 'खून का प्यासा' युद्ध में उपस्थित न हो सके। हां, यह तो बताओ कि रज्जन और रतन कहां हैं?

मां—वे भी अभी-अभी आ रहे होंगे। उन दोनों ने बड़े परिश्रम से 'खून के प्यासा' के एक शागिर्द को गिरफ्तार किया है।

उन दोनों में उक्त बातें हो रही थीं कि रज्जन और रतन भी आ उपस्थित हुए। विजय ने कहा—कहो रज्जन! तुम लोगों ने किसे गिरफ्तार किया है?

रज्जन—हम लोगों ने 'खून के प्यासे' के प्रिय शागिर्द रघुवंश को गिरफ्तार किया है।

विजय—शाबाश! मालूम होता है विधाता मेरे अनुकूल है। अब हमारा काम बड़ी सरलतापूर्वक हो जाएगा। जाओ तुम। रघुवंश को यहां लाओ। मैं प्रेतात्मा का आह्वान करना चाहता हूं। जल्द आना। प्रातःकाल होने तक शिविर में पहुंच जाना है।

इतना कहकर विजय ने गाढ़ी नीली रोशनी वाला बल्ब जो उस

कमरे में जल रहा था, बुझा दिया। बल्ब के बुझते ही कमरे में भयानक अन्धकार छा गया। विजय ने रतन से थोड़ी-सी आग मंगवाई—और अग्नि पर पालथी मार कर बैठ गया। इतने में ही रज्जन भी रघुवंश को लेकर आ पहुंचा। रघुवंश वहां पहुंचते ही घबड़ा गया, क्योंकि वह वहां किसी को भी सूरत अन्धकार के कारण नहीं देख सकता था। कुछ देर बाद रघुवंश के कानों में एक गम्भीर आवाज सुनाई पड़ी—रघुवंश तुम्हारा गुरु 'खून का प्यासा' मेरा महान् शत्रु है परन्तु तुमसे मुझे कोई शत्रुता नहीं। मैं तुम्हारे ऊपर कुछ क्रियाओं की साधना करना चाहता हूं। मेरा कार्य समाप्त होते ही तुम छोड़ दिए जाओगे। अतः मेरी आज्ञा का पालन करो और भूमि पर चित्त लेट जाओ। डरो नहीं मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं।

उपरोक्त बात विजयसिंह ने कही थी। रघुवंश पर उसकी गंभीर वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह तुरन्त ही भूमि पर चित्त लेट गया। उसने सोचा—जरा देखना चाहिए कि यह बोलने वाला व्यक्ति किस क्रिया की साधना करता है। रघुवंश के लेटते ही विजय ने कुछ काला-सा पदार्थ अग्नि में डाला, जिससे सुगन्धित धूम्रराशि कमरे में फैलने लगी। रघुवंश चुपचाप लेटा हुआ था परन्तु एकाएक उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसका दम घुटा जा रहा है। और उसके बदन पर हजारों मन बोझ आ पड़ा है। रघुवंश ने चिल्लाना चाहा परन्तु उसके मुंह से केवल घरघराहट की एक आवाज निकली। विजय बराबर वह काला पदार्थ अग्नि में छोड़ रहा था और अपना मंत्रोच्चारण भी करता जाता था। उधर रघुवंश की अजीब हालत थी। उसकी नाक घरघरा रही थी और वह अपने हाथ-पैर भी पटक रहा था; मानो उसे अत्यधिक पीड़ा हो रही थी। थोड़ी देर बाद वह बेहोश हो गया।

इसके बाद विजयसिंह बोला—रज्जन रघुवंश के ऊपर काला कपड़ा डाल दो, मुंह खुला रहे। तुम लोग सावधानी से बैठ जाओ। कोई खड़ा न रहे। सब लोग सांस धीरे-धीरे लो। अब मैं प्रेत को बुलाता हूं।

रज्जन ने आगे बढ़कर एक काले कपड़े से रघुवंश का चेतनाहीन शरीर ढक दिया, केवल मुंह खुला रहा। सब लोग सावधानी से बैठ गए तो विजय ने वह काला पदार्थ पुनः अग्नि में छोड़ा और तत्पश्चात् कोई मन्त्र पढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में उसका शरीर एक बार पुनः जोरों से कांपा और तब वह क्रमशः शिथिल होने लगा। किंचित समय पश्चात् उस कमरे के एक कोने में एक दीपशिखा-सी जल उठी और फिर तुरन्त ही बुझ गई। अब विजय का शरीर पुनः पूर्वावस्था को आने

को आने लगा। और शीघ्र ही वह पूर्णतया चैतन्य हो गया और धीरे-से बोला—सब लोग सावधान रहना। प्रेतात्मा इस कमरे में आ गई है वह देखो उस कोने में।

सभी ने कोने की ओर देखा—एक भयंकर काली परछाईं खड़ी थी। विजय बोला—पवित्र आत्मा ! आज मैं तुमसे एक बड़ा ही दुष्कर कार्य लेना चाहता हूं। क्या तुम तैयार हो।

इन बातों के उत्तर स्वरूप कोने में पुनः दीपशिखा प्रकाशित हो उठी। विजय पुनः बोला—बड़ी प्रसन्नता की बात है कि तुम मेरा यह कार्य करने को तैयार हो। पवित्र आत्मा ! मेरी प्रार्थना है कि तुम इस बेहोश आदमी की आत्मा में प्रवेश कर जाओ, ताकि यह मनुष्य मेरी आज्ञानुसार कार्य कर सके।

विजय चुप हो गया ; कोने में शिखर पुनः प्रज्वलित हो उठी और धीरे-धीरे बेहोश रघुवंश की ओर बढ़ने लगी। थोड़ी ही देर में वह उसकी नाक के पास पहुंच गई। नाक के पास पहुंचकर दीपशिखा कुछ देर तक रुकी, फिर शीघ्रता से रघुवंश की नासिका में घुसकर लुप्त हो गई। नासिका में प्रवेश करते ही रघुवंश का शरीर एक बार जोरों से कांपा, पुनः उसके मुंह से भयंकर घरघराहट की आवाज निकली, उफ ! वह शैतान···! ···मुझे···मार···

इसके आगे रघुवंश का गला रुक गया और वह पुनः पूर्णतया शिथिल हो गया ! विजय बोला—घबड़ाओ नहीं रघुवंश। अब तुम मेरे अनुचर हो। अब तुम्हें मेरी आज्ञानुसार चलना होगा। यदि तुम ऐसा न करोगे तो मैं तुम्हें कभी पूर्णतया होश में न लाऊंगा।

रघुवंश के मुंह से एक आवाज निकली—आप मेरे स्वामी हैं। मैं आपकी आज्ञानुसार चलने को तैयार हूं। मुझे क्या करना होगा?

विजय—इस समय रात्रि के तीन बज गए हैं। प्रातःकाल होते ही तुम यहां से रवाना हो जाना और शीघ्र ही उस स्थान पर पहुंचना जहां पर सोनपुर और प्रेमनगर के महाराजाओं में युद्ध होने वाला है। वहां पहुंचकर तुम प्रेमनगर की सेना में घुस जाना और अपने गुरु से भेंट करके उससे कहना कि तुमने कनकलता को जीवित देखा है और उस पर इस समय बड़ी ही आफत आई है। तुम्हारे मुंह से यह सुनते ही 'खून का प्यासा' बेचैन हो जाएगा। तब तुम उसे अपने साथ यहां लाना और मेरे कैदखाने में कैद करा देना। जब मैं युद्ध भूमि में विजयी होकर लौटूंगा तो उसके विषय में विचार करूंगा।

रघुवंश ने उसी प्रकार बेहोशी की अवस्था में उत्तर दिया—मैं इन

आज्ञाओं का प्राणपण से पालन करूंगा ।

विजय—अच्छा ! तो मैं तुम्हें जीवन भिक्षा प्रदान करता हूं । लेकिन देखना यदि तुमने मेरी आज्ञा का पालन न किया, तो कुत्ते की मौत मारे जाओगे ।

विजय ने पुनः वह काला [illegible] [illegible] से [illegible] और [illegible] किया । शीघ्र ही रघुनाथ की बेहोशी दूर हो गई और वह पूर्ण चैतन्य होकर उठ बैठा । इस समय उसकी अजीब हालत थी । वह इस प्रकार झूम रहा था, मानो शराब के नशे में हो ।

फिर विजय उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर रण-भूमि की ओर चल पड़ा । प्रातःकाल होने में केवल दो घड़ी की देरी थी । आसमान पर सितारे अभी तक टिमटिमा रहे थे । सड़क के दोनों तरफ भयंकर झाड़ियां थीं । इन्हीं झाड़ियों में से एक के पास आकर विजय एकाएक रुक गया । उसने भयभीत नेत्रों से देखा कि उस घनी झाड़ी में से दो भयंकर आंखें उसे घूर रही हैं । विजय को आगे बढ़ने का साहस न हुआ । वह वहीं ठिठक गया । वे लाल-लाल आंखें उसे अभी तक घूर रही थीं ।

—दो बड़ी-बड़ी आंखें !

२६

प्रातःकाल के साथ ही साथ मानव जगत में एक नवीन जीवन का संचार हो गया । बालसूर्य प्राचीन दिशा में खिलखिला उठे । उनकी सुनहली किरणों ने एक बार पुनः मनुष्य के आलस को दूर भगाकर नवीन उत्साह तथा स्फूर्ति भर दी । प्रेमनगर के महाराज रसिकरसाल ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दे दी । युद्ध के बाजे बजने लगे । सभी उत्साह के साथ युद्ध में भाग लेने के लिए प्रस्तुत हो गए । 'खून का प्यासा' भी अपनी भयंकर नकाब लगाए हुए एक काले रंग के घोड़े पर सवार होकर सेनापति के साथ घूमकर सैनिकों का निरीक्षण करने लगा ।

महाराज चन्द्रदीपसिंह ने जब यह सुना कि उनका विपक्षी युद्ध के लिए तैयार हो चुका है तो उन्होंने भी तैयारी करने की आज्ञा दे दी । परन्तु इस समय महाराज के मन में एक विचित्र प्रकार की हलचल मची हुई थी क्योंकि सेनापति विजयसिंह जो आधी रात को ही कहीं चला गया था अभी घण्टा भर दिन चढ़ जाने पर भी नहीं लौटा था ।

धीरे-धीरे दोनों ओर की सेनाएं मैदान में एकत्रित होने लगीं। प्रेमनगर की सेना के आगे-आगे 'खून का प्यासा', महाराज रसिकस्थान तथा सेनापति थे और इधर सोनपुर की सेना के आगे केवल महाराज चन्द्रदीपसिंह ही थे। यह देखकर 'खून के प्यासे' ने महाराज रसिकस्थान से कहा—महाराज! मालूम होता है कि विजयसिंह ने महाराज चन्द्रदीपसिंह को धोखा दिया। लीजिए! आपकी जीत होने में जरा भी सन्देह नहीं है।

महाराज चन्द्रदीपसिंह अपने सैनिकों को युद्ध की आज्ञा देने ही वाले थे कि सरपट आते हुए एक घोड़े की टापों ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। विजयसिंह को देखकर समग्र सैनिक जो अब तक मुरदे की तरह हो रहे थे पुनः उत्साहित हो उठे। उनका उत्साह तथा उल्लास पहले से भी बढ़ गया।

विजयसिंह ने आकर महाराज चन्द्रदीपसिंह को अभिवादन किया और बोला—महाराज! विलम्ब के लिए क्षमा करें। मैं घर से बहुत पहले चल चुका था परन्तु मार्ग में एक अद्भुत संकट आ पड़ने से मैं शीघ्र उपस्थित न हो सका।

महाराज—खैर प्रसन्नता तो इस बात की है कि तुम ठीक समय पर आ गए। वह देख रहे हो! प्रेमनगर की सेना के आगे-आगे काला नकाबपोश कौन है।

विजय—देख रहा हूं महाराज परन्तु मैं उसको दूर करने के लिए पूरा प्रवन्ध कर आया हूं।

० ० ०

'खून का प्यासा' आवाज़ सुनकर ठिठक गया, क्योंकि वह उसके प्रिय शागिर्द रघुवंश की आवाज थी। उसने पीछे देखा तो रघुवंश दीख पड़ा। इस समय रघुवंश की विचित्र दशा थी। उसके बाल बिखरे थे। मुंह सूख गया था। वह बेतहाशा दौड़ा हुआ आ रहा था मानो कोई आवश्यक समाचार लाया हो। रघुवंश जाकर 'खून के प्यासे' के पास रुक गया और उसकी ओर न देखकर सामने की ओर देखता रहा। 'खून के प्यासे' ने अपने शागिर्द की विचित्र दशा देखी। इस बात पर भी ध्यान दिया कि वह उससे आंखें न मिलाकर सामने की ओर देख रहा है। 'खून के प्यासे' को महान् आश्चर्य हुआ! वह बोला—रघुवंश! तुम्हारी यह हालत क्यों है? तुम इस प्रकार दौड़ते हुए कहां से आ रहे हो? रघुवंश ने उसकी इन बातों का कोई उत्तर न दिया वरन् सामने ही देखता रहा। कुछ देर बाद पागलों-सा बोला—गुरुजी!

कनकलता...हां वही राजकुमारी कनकलता...अभी तक जीवित है। एकदम जीवित।

कनकलता का नाम सुनते ही 'खून का प्यासा' चौंक उठा। बोला—यह क्या कह रहे हो रघुवंश ? कनकलता अभी तक जीवित है ?

रघुवंश उसी प्रकार सामने देखता हुआ बोला—हां, गुरुजी ? वह अभी तक इस संसार में जीवित है। मैंने उसे देखा है—अपनी इन्हीं आंखों द्वारा।

'खून का प्यासा'—क्या कहा ? तुमने देखा भी है उसे ? अच्छा शीघ्र बताओ कि वह कहां है ?

उसपर इस समय महान् विपत्ति आई हुई है। यदि आप शीघ्र ही, अभी ही—मेरे साथ न चलेंगे तो कनकलता को जीवित न पाएंगे।

'खून का प्यासा'—परन्तु इस युद्ध का क्या होगा रघुवंश ! मेरे जाते ही प्रेमनगर की सेना के पैर उखड़ जाएंगे।

गुरुजी आप व्यर्थ ही आगा-पीछा करके अपने भाग्य को ठुकरा रहे हैं। सोचिए तो जिसके बिना आपका संसार सूना था, जिसके लिए दिन-रात तड़पते थे तथा जिसको मरी हुई समझकर आप प्रतिदिन बिलखा करते थे। उसी कनकलता को आप आज जीवित अवस्था में पा रहे हैं तथा यह भी जान गए हैं कि उस पर संकट आया हुआ है, यदि उसकी शीघ्र ही रक्षा न की गई तो वह नहीं बचेगी, फिर भी आप उसे नहीं बचाना चाहते ? बड़े निष्ठुर हैं आप ! बड़े ही हृदयहीन हैं आप !

'रघुवंश कह नहीं सकता कि तुम्हारी इस खबर ने मुझे कितनी प्रसन्नता प्रदान की है। परन्तु यह जानकर कि कनकलता पर इस समय महान् संकट आया हुआ है, मैं बड़ी ही दुविधा में पड़ गया हूं। फिर भी मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं। इस युद्ध की मुझे परवाह नहीं। आओ ! तुम भी मेरे घोड़े पर बैठ जाओ।"

रघुवंश भी 'खून के प्यासे' के घोड़े पर बैठ गया। घोड़ा दोनों को लिए हुए आगे बढ़ा, इतने में ही महाराज रसिकरसाल का सेनापति हांफता हुआ आया और 'खून के प्यासे' से बोला—महाराज को विजयसिंह ने बेहोशी की अवस्था में कैद कर लिया है ! युद्ध का रंग तो बुरा मालूम पड़ रहा है।

"मैं इस समय रुक नहीं सकता। तुम सेना को सम्हाले रखो।"

सेनापति ने कहा—जिस समय हम लोगों ने सुना कि महाराज चन्द्रदीपसिंह को कोई अज्ञात मनुष्य सहायता दे रहा है, उसी समय

मैंने महाराज को राय दी थी कि सेना को लौट चलने की आज्ञा दी जाए। महाराज मेरी राय से पूर्णतया सहमत थे, परन्तु तुमने बीच में पड़कर उन्हें उत्तेजित कर दिया और लड़ाई करा ही छोड़ी। अब इस समय जबकि महाराज कैद हो गए हैं तुम रणभूमि से अलग हो जाना चाहते हो? यह कपट है—अन्याय है। मेरे जीवित रहते तक तुम रणभूमि से बाहर कभी पैर नहीं रख सकते।

'खून का प्यासा'—सेनापति मैं कभी नहीं रुक सकता। जीवन-मरण का प्रश्न इस समय मेरे सामने है। मुझे जाने दो। मैं इस समय बहुत जल्दी में हूं। मुझे रोकना तुम्हारे लिए अच्छा न होगा।

यह सुनते ही सेनापति भी क्रोधित हो उठा और बोला—शैतान! तूने ही तो हमारा सत्यानाश कराया और अपना मुंह छिपाकर भाग जाना चाहता है। कायर! डरपोक!!

'खून का प्यासा' क्रोध से कांप उठा। उसकी तलवार बिजली की तरह सेनापति की ओर बढ़ी साथ ही उसके मुंह से ये शब्द निकले, 'नादान। अपने किए का फल भोग।' और दूसरे ही क्षण सेनापति का सिर चार हाथ दूर गिरा। 'खून के प्यासे' का घोड़ा उसे छोड़ रघुवंश को लिए हुए शीघ्र ही एक ओर दौड़ चला।

० ० ०

एक घनी झाड़ी के पास पहुंचकर रघुवंश बोला—बस गुरु जी। यहां घोड़ा रोक दीजिए।

'खून का प्यासा' और रघुवंश दोनों घोड़े पर से उतर पड़े। रघुवंश आगे तथा उसके पीछे 'खून का प्यासा' उसी झाड़ी में घुसे। झाड़ी के भीतर काफी जगह थी और बीचों-बीच पत्थर का एक चबूतरा बना हुआ था। रघुवंश ने कोई पेंच ऐंठा जिससे चबूतरे का पत्थर सरक गया और अन्दर जाने के लिए सीढ़ियां दिखाई पड़ने लगीं। रघुवंश 'खून के प्यासे' को उसी कमरे में ले आया जो गुरुघटाल का 'यंत्र गृह' था। यहां पहुंचकर 'खून का प्यासा' बोला—उफ! बड़ा ही भयंकर कमरा है। लेकिन कनकलता कहां है?

रघुवंश ने कहा—इधर आइए!

एक दूसरे कमरे में आकर रघुवंश ने 'खून के प्यासे' को एक मोखे में सिर डालकर दूसरी ओर देखने को कहा। 'खून के प्यासे' ने मोखे द्वारा उस ओर देखा। देखते ही ठगा सा हो गया। उसने देखा कि कनकलता एक हरे-भरे बाग में धीरे-धीरे टहल रही है। कनकलता को जीवित देखकर उसे बहुत आनन्द हुआ। वह बोला—सचमुच

वही है। एकदम जीती जागती। लेकिन वहां का रास्ता कौन-सा है।

रघुवंश—इधर आइए।

रघुवंश एक सुरंग के मुहाने पर आकर रुक गया और बोला—यह सुरंग उस बाग तक जाती है। सुरंग देखते ही 'खून का प्यासा' उसमें घुस गया और लम्बे-लम्बे डग बढ़ाता हुआ आगे की ओर बढ़ा तथा रघुवंश को भी अपने पीछे-पीछे आने का संकेत किया परन्तु रघुवंश उसके पीछे न गया। वहन् वह सुरंग के बाहर ही खड़ा रहा। जब 'खून का प्यासा' सुरंग में कुछ आगे बढ़ गया तो रघुवंश ने एक खटका दबाया। खटका दबाते ही एक ओर से एक मजबूत जंगले ने आकर उस का मुंह मजबूती के साथ आकर बन्द कर दिया।

'खून का प्यास' दस पग आगे जाकर रुक गया क्योंकि वह सुरंग वहीं जाकर समाप्त हो गई थी और आगे जाने का कहीं भी मार्ग नहीं था। 'खून के प्यासे' ने इनके विषय में कुछ पूछने के लिए पीछे सिर घुमाया क्योंकि उसे विश्वास था कि रघुवंश उसके पीछे ही पीछे आ रहा है, परन्तु उसे वहां न देखकर वह और भी चकित हो गया। अन्त में वह पीछे की ओर लौटा परन्तु सुरंग के मुहाने पर पहुंचकर उसने देखा कि सुरंग का मुंह मजबूती से बन्द है और बाहर रघुवंश खड़ा हुआ पागलों की तरह एक ओर देख रहा है।

'खून का प्यासा' बोला—यह क्या माजरा है रघुवंश !

रघुवंश जिधर देख रहा था, उधर देखता ही रहा और बोला—वह कैद है गुरुजी। आपके लिए कैद !

'खून का प्यासा'—कैद ? किसने मुझे कैद किया है रघुवंश !

रघुवंश—मैंने गुरुजी ! मेरे स्वामी की आज्ञा ऐसी ही थी।

'खून का प्यासा'—तुम्हारा स्वामी ?

रघुवंश स्थिर भाव से बोला—मेरा स्वामी ! मैं नहीं जानता कि कौन है मेरा स्वामी।

'खून का प्यासा'—तुम पागल हो गए हो रघुवंश ?

रघुवंश—नहीं गुरुजी ? मैं पागल नहीं हूं। यद्यपि मेरी अवस्था कुछ विचित्र-सी है और मुझे ऐसा मालूम होता है कि कोई अज्ञात मनुष्य मुझे धक्के मार-मारकर मुझ से अपनी इच्छानुसार कार्य करा रहा है परन्तु फिर भी मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं। आप सच जानिए मैंने आपको अपने स्वामी की ही आज्ञा से कैद किया है। वह स्वामी हा ठहर जाइए। उसका नाम मुझे याद आ रहा है···मेरे स्वामी का नाम गुरुघंटाल···।

'खून का प्यासा' क्रोध से कांप उठा। गरजकर बोला——ओह शैतान के बच्चे! आखिर तूने मुझे ही धोखा दिया। मुझे धोखा देकर मेरे शत्रु से जा मिला।

रघुवंश उसी प्रकार स्थिर खड़ा रहा और उधर ही देखता रहा, जिधर देख रहा था। कुछ देर बाद वह बोला मैंने धोखा नहीं दिया है गुरुजी! मैं जानता हूं कि इस समय मेरी अवस्था बड़ी ही विचित्र हो रही है। मैं सोचने का प्रयत्न कर रहा हूं, परन्तु दिमाग में न जाने क्यों परेशानी बहुत है। मैं अपने भले-बुरे का निर्णय कर पा रहा हूं। मेरा हृदय न जाने कौन खींचे जा रहा है।

ओह! आस्तीन के सांप! गुरु ने तुझ पर अविश्वास न किया, छोटे भाई की तरह प्यार किया। उसी को तूने डस लिया। नमकहराम याद रख! तूने अपने गुरु के साथ छल किया है। इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। रघुवंश! तू छली है, सुनहरा सांप है, जहर का प्याला है।

एकाएक बिजली के कड़कने की आवाज आई——और मैं भी कहता हूं कि नादान है।

इतना कहकर आवाज बन्द हो गई और एक विकट अट्टहास सुनाई पड़ा, जिसे सुनकर 'खून के प्यासे' के कान बहरे हो गए। इतने में ही उसकी दृष्टि सामने की ओर पड़ी और साथ ही चिल्ला उठा——यह भयानक शैतान!!

२७

पाठक पढ़ चुके हैं कि रघुवंश प्रेतात्मा के वशीभूत होकर 'खून के प्यासे' को रणभूमि से बहला लाया था और 'गुरुघंटाल' के गुप्त स्थान में कैद कर दिया था। जिस समय 'खून का प्यासा' रघुवंश को भला-बुरा कह रहा था, उसी समय एक कड़कती हुई आवाज सुनाई पड़ी—— और मैं कहता हूं कि तू भी नादान है!

'खून का प्यासा' इस आवाज को सुनकर आश्चर्यचकित हो गया क्योंकि उपर्युक्त बातें किसी दूसरे ने नहीं वरन् स्वयं रघुवंश ने ही कही थीं। उस समय उसका रूप बड़ा ही भयंकर हो गया था। उसकी लाल-लाल आंखें बाहर की ओर निकल पड़ी थीं। रघुवंश उस समय ठीक पिशाच की तरह दिखाई पड़ रहा था। 'खून का प्यासा' रघुवंश की दशा देखकर डर गया——इतने ही में रघुवंश ने एक विकट अट्टहास किया। उसका अट्टहास इतना तीव्र था कि 'खून के प्यासे' के कानों के

पड़के टुकड़े हो गए। रघुवंश की दशा देखकर 'खून का प्यासा' चिल्ला उठा—ओह ! यह भयानक शैतान !!

रघुवंश उस समय सचमुच शैतान ही दीख पड़ता था परन्तु उसकी यह अवस्था शीघ्र ही बदल गई और वह पुनः शान्त होकर सामने की ओर चुपचाप देखने लगा।

'खून के प्यासे' की बातें सुनकर रघुवंश के हृदय में न जाने क्यों एक भयंकर ज्वाला-सी उत्पन्न हुई। उसने अपने दोनों हाथों से अपनी आंखें मूंद लीं और हांफते हुए बोला—बस कीजिए गुरुजी ! मैं निरपराध हूं। न जाने कौन अज्ञात शक्ति मुझसे जबरदस्ती ये सब काम करा रही है। इसमें मेरा दोष नहीं।

रघुवंश की बातें सुनकर 'खून का प्यासा' चिंता में पड़ गया। वह रघुवंश पर कभी अविश्वास नहीं करता था। रघुवंश की अवस्था पागलों-सी देखकर 'खून के प्यासे' ने यही निष्कर्ष निकाला कि किसी ने रघुवंश को कोई ऐसी औषधि खिला दी है कि वह अपना सर्वज्ञान खो बैठा है और उस मनुष्य की आज्ञानुसार ही सब कार्य कर रहा है। 'खून के प्यासे' ने एक बार रघुवंश के मुख की ओर देखा और तब उसका विश्वास और भी पक्का हो गया क्योंकि रघुवंश के चेहरे पर छल तथा कपट का कोई चिन्ह न था वरन् उसके मुख पर एक विचित्र प्रकार से पागलपन का आभास मिल रहा था। वह इस प्रकार झूम रहा था मानो नशे में हो और वह बराबर एक ही ओर देख रहा था। 'खून का प्यासा' सोचने लगा कि गुरुघंटाल ने ही रघुवंश को कोई औषधि खिला अपने वश में कर लिया है तथा उसे मेरे पास मुझे बहकाने के लिए भेजा था ताकि रणभूमि से मेरे चले जाने पर सोनपुर की विजय हो जाए। उफ ! यह चालबाजी अब समझ में आई। वास्तव में रघुवंश निरपराध है।

'खून के प्यासे' ने दो मिनट तक न जाने क्या सोचा, तत्पश्चात अपने झोले में से एक विचित्र प्रकार का यन्त्र निकाला जो कि न तो बहुत भारी था और न बहुत छोटा। 'खून के प्यासे' ने इस यन्त्र का कोई खटका दबाया। एक बहुत महीन सुरीली आवाज से वह सुरंग गूंज उठी। थोड़ी देर के बाद 'खून के प्यासे' ने उस यन्त्र में मुंह लगाकर कहा—प्यारेलाल ! प्यारेलाल !!

उसी यन्त्र के दूसरे भाग से आवाज आई—जी गुरुजी ! आप इस समय कहां से बोल रहे हैं ?

'खून का प्यासा'—मैं गुरुघंटाल के गुप्त स्थान से बोल रहा हूं।

रघुवंश पागल हो गया। घबड़ाना नहीं, मैं उसे लेकर अभी आता हूं।

इतना कहकर 'खून के प्यासे' ने वह यन्त्र पुनः झोले में रख लिया और एक दूसरा ही यन्त्र निकाला। उस यन्त्र द्वारा उसने उन लोहे की छड़ों को, जिनसे उस सुरंग का मुंह बन्द था, काट डाला और आप सुरंग से बाहर निकल आया। रघुवंश न जाने किस विचार में तल्लीन था परन्तु 'खून के प्यासे' को सुरंग से बाहर निकला हुआ देखकर उसकी तन्द्रा भंग हो गई वह बोला--हैं ! आप कैदखाने से बाहर कैसे निकल आए ?

'खून का प्यासा'---मैं अपने बल से निकल आया रघुवंश ! तुम मेरे साथ चलोगे।

रघुवंश--नहीं गुरुजी। मैं बिना स्वामी की आज्ञा से कैसे जा सकता हूं ? आप बड़े ही कठोर हैं, तभी तो मुझे परेशान कर रहे हैं। यदि आप मेरा हृदय चीरकर देख सकते और देखते कि कौन वहां पर बैठा हुआ मुझे परेशान कर रहा है तथा मुझे धक्के मार-मार अपनी इच्छानुसार कार्य करा रहा है, तो आप मेरी विवशता का अनुमान कर सकते। मैं वस्तुतः विवश हूं गुरूजी।

'खून का प्यासा' समझ गया रघुवंश अपनी मरजी से उसके साथ कभी न जाएगा, अतः उसने अपने कान से एक फाहा निकालकर रघुबंश के हाथ पर रख दिया और कहा रघुवंश ! जरा इसे सूंघना तो।

रघुवंश ने आनाकानी न की और तुरन्त ही सूंघ लिया। सूंघते ही उसका सिर चकराया और दूसरे ही क्षण वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा। 'खून के प्यासे' ने अपनी कमर से चादर खोलकर उसी में बेहोश रघुवंश को बांधा, तत्पश्चात् उस गठरी को अपनी पीठ पर कस लिया ! जिस सुरंग से रघुवंश उसे वहां तक लाया था, उसी सुरंग से बाहर आ गया। झाड़ी के बाहर आते ही उसने अपना 'कुर्सी यन्त्र' निकाला और उसका खटका दबाया। वह यन्त्र बढ़कर बड़ी-सी आरामकुर्सी की तरह हो गया। 'खून का प्यासा' इसी कुर्सी पर जाकर बैठ गया और पुनः कोई खटका दबाया। शीघ्र ही वह कुर्सी यन्त्र डगमगाया और सर से आकाश को उड़ गया।

० ० ०

अब हम पाठकों को लेकर पुनः रणभूमि की ओर चलना चाहते हैं। पाठक पढ़ चुके हैं कि 'खून के प्यासे' ने जो छुरा बिजय के ऊपर चलाया था, वह उसे न लगकर महाराज रसिकरसाल को लगा और वे तुरन्त ही बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े। इसके बाद ही रघुवंश आ

पहुंचा और 'खून के प्यासे' को बहलाकर अपने साथ ले गया।

ज्योंही महाराज रसिकरसाल 'खून के प्यासे' के छूरे से बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े, त्योंही विजय ने उन्हें उठा लिया और अपने विश्वासी सिपाही के सुपुर्द कर दिया तथा उसे यह आज्ञा दे दी कि महाराज रसिकरसाल को ले जाकर खेमे में रखे। पहरे आदि की जरा भी त्रुटि न हो।

महाराज रसिकरसाल को अपने सैनिकों के सुपुर्द करके विजयसिंह ने 'खून के प्यासे' की ओर देखा। उस समय 'खून का प्यासा' रघुवंश से बातचीत कर रहा था। रघुवंश को आया हुआ देख विजय अत्यन्त आनन्दित हुआ और जब रघुवंश 'खून के प्यासे' को बहकाकर रणभूमि से चला गया तब तो विजय हर्षातिरेक से उछल पड़ा। उसने 'खून के प्यासे' द्वारा प्रेमनगर के सेनापति का मारा जाना स्वयं अपनी आंखों से देखा था——अब उसकी जीत ही जीत थी।

महाराज रसिकरसाल के कैद होते ही तथा सेनापति के मारे जाते ही प्रेमनगर की सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। सोनपुर की जीत हुई। महाराज चन्द्रदीपसिंह ने हर्ष से विजय को गले लगा लिया। विजय बोला——महाराज ! मेरी लाज ईश्वर ने रख ली। अब मैं इस समय अपने स्वामी के पास जा रहा हूं। कल मैं अपना आदमी भेजूंगा। आप रसिकरसाल को जिसे मैंने आज जान पर खेलकर कैद किया है, मेरे उसी आदमी के हवाले कर दीजिएगा !

इतना कहकर विजय अपने गुप्त स्थान की ओर चला गया।

२२

विजय बोला——क्या कहा ? रघुवंश 'खून के प्यासे' को बहकाकर यहां तक लाया था परन्तु अन्त में वह भाग गया।

रज्जन ने उत्तर दिया——जी सरकार ! हम लोगों को यह बात तब मालूम हुई जब हमने सुरंग वाले जंगले को टूटा हुआ तथा रघुवंश को गायब पाया। टूटे-फूटे जंगले के पास ही 'खून के प्यासे' का लिखा हुआ एक पुरजा गिरा था। लीजिए !

विजय उस पुरजे को पढ़ने लगा।

मेरे महान शत्रु !

तुमने मेरे शागिर्द को न जाने कौन-सी दवा खिलाकर उसे अपने वश में कर लिया था और उसे पागल बना दिया था। उसी पागल की

बातों में आकर मैं यहां तक आया था। यहां आकर मुझे प्रसन्नता भी हुई क्योंकि मैंने कनकलता को जीवित अवस्था में देख लिया, जिसकी मुझे कुछ भी आशा न थी। यहां पर आकर रघुवंश ने मुझे एक सुरंग में बन्द कर दिया था। परन्तु मैं अपने कौशल से सुरंग का जंगला तोड़ कर जा रहा हूं साथ ही रघुवंश को लिए जाता हूं। अब शीघ्र ही हमारी-तुम्हारी आखिरी भेंट होगी। जल्दी ही कनकलता को छुड़ाने के लिए तुम्हारे पास दल-बल के साथ उपस्थित होऊंगा और तब तुरन्त ही हमारे-तुम्हारे भाग्य का निर्णय हो जाएगा, मैं चाहता हूं कि इस संसार में या तो तुम्हीं रहो या मैं ही। दोनों का रहना असम्भव है।

—'खून का प्यासा'

पत्र पढ़कर विजय बोला—ओह! मुझे इस बात का बड़ा ही शोक है कि हमारा महान् शत्रु हमारे कब्जे में आकर भी निकल गया।

° ° °

इस समय विजयसिंह अपने शयनागार में एक आराम कुर्सी पर लेटा हुआ था। विजय के पास एक दूसरी कुर्सी पर विजय की मां बैठी है, परन्तु आज उसका दूसरा ही ठाठ है। आज उसके पहनावे को देखकर यही मालूम होता है कि वह कहीं की 'राजमाता' है उसके चेहरे का सारा शोक-संताप लुप्त हो गया है और उसके मुख पर इस समय एक गम्भीर मुस्कराहट खेल रही है! जानते हैं क्योंकि उसका महान् शत्रु अर्थात् उसके पति का घातक वही दुष्ट रसिकरसाल आज उसके यहां बन्दी के रूप में कैद खाने में पड़ा हुआ मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। विजय ने रज्जन से कहा—रज्जन! बन्दीखाने से रसिकरसाल को यहां लाओ।

रज्जन तुरन्त चला गया और कैदखाने से रसिकरसाल को लेकर शीघ्र उपस्थित हुआ। इस समय रसिकरसाल के पैरों में बेड़ी तथा हाथ में हथकड़ी थी। ज्योंही उसने कमरे में प्रवेश किया, उसकी दृष्टि विजय की मां पर पड़ी, उसे देखते ही रसिकरसाल ने चिल्लाकर अपनी दोनों आंखें मूंद लीं और हांफता हुआ बोला—यह मैं किसे देख रहा हूं? महारानी कलावती···।

विजय—अन्यायी! खोल दे अपनी आंखें और हमारे मुरझाए हुए चेहरे को नजर भरकर देख। तूने हम लोगों के साथ किस प्रकार की नमकहरामी की है, उसका कोई दण्ड विधान में ही नहीं। तूने ही मेरे छोटे भाई को दो ही वर्ष की अवस्था में गायब कर दिया। जिसका आज तक भी पता न चला कि क्या हुआ और कहां गया और इसके

पश्चात् मेरे पिता महाराज इन्द्रसेन के कलेजे में खञ्चर भोंककर तूने अपनी सेवावृत्ति का अच्छा परिचय दिया था। अब तो तुझे मालूम हो गया कि तेरे द्वारा लाख दुःख दिये जाने पर भी प्रेमनगर का वास्तविक उत्तराधिकारी राजकुमार विजयसिंह जीवित है और उसकी दुखिनी माता महारानी कलावती भी।

रसिकरसाल कांपते हुए बोला—तुम लोग धोखा देते हो। तुम लोग मुझे धोखा दे रहे हो। तुम वास्तव में विजयसिंह और महारानी कलावती नहीं हो। धोखा देकर प्रेमनगर का राज्य हड़पना चाहते हो।

विजय—दुराचारी! इधर देख! क्या हमारी इन हथेलियों पर गुदे हुए इन चक्राकार गुदनों को देखकर भी तू यह नहीं समझता कि वास्तव में हम ही लोग विजयसिंह और महारानी कलावती हैं।

इतना कहकर विजय ने अपनी हथेली को रसिकरसाल के आगे कर दिया। महारानी कलावती अर्थात् विजय की मां ने भी वैसा ही किया। रसिकरसाल ने अपनी आंखें खोलकर उन हथेलियों पर गुदे हुए चक्राकार गुदने की ओर देखा। वह कांप उठा। उसने भय से अपनी आंखें मुंद लीं और गिड़गिड़ाता हुआ बोला—बन्द कर लो अपनी हथेलियां। ओह! मुझे मालूम हो गया कि अब मेरे पाप का घड़ा फूट गया। विजयसिंह और महारानी कलावती मैं वास्तव में अपराधी हूं। मुझे अपने कर्मों पर बड़ी ग्लानि हो रही है और मैं तुमसे सच्चे हृदय से क्षमा मांगता हूं।

विजयसिंह—पापी, मैं क्षमा करना नहीं चाहता।

तत्पश्चात् विजय ने रञ्जन से कहा—रञ्जन ले जाओ इसे और बेहोश करके पुनः मेरे पास लाओ। मैं राजकर्मचारियों के आगे इस दुष्ट का भण्डाफोड़ करूंगा।

• ० ०

एक लम्बे-चौड़े कमरे में प्रेमनगर राज्य के बूढ़े मन्त्री, तथा अन्य पदाधिकारी उपस्थित हैं। मन्त्री धीरे-धीरे कह रहे हैं—भाइयो! आज प्रातःकाल ही रणभूमि से एक दूत आया है जिसकी जबानी मालूम हुआ है कि हमारे महाराज रसिकरसाल कैद कर लिए गए हैं और सेनापति भी मार डाला गया है। हमारे महाराज के कैद हो जाने से अब इस राज्य पर सोनपुर के महाराज चन्द्रदीपसिंह का अधिकार है, परन्तु अभी तक महाराज चन्द्रदीपसिंह के पास से हमारे पास कोई संदेश नहीं आया, इससे यही मालूम होता है कि वे हम लोगों से अत्यन्त रुष्ट हैं। हमारे महाराज ने उनके साथ अन्याय किया था और

उन पर विपत्ति की अवस्थता में ही आक्रमण कर दिया था, परन्तु दैव संयोग हमारी हार और महाराज चन्द्रदीपसिंह की जीत हुई। ऐसी हालत में उनका क्रोधित हो उठना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मुझे तो डर है कि शायद क्रोध में आकर वे अपनी सेना को प्रेमनगर में घुसकर 'कत्लेआम' तथा लूट-पाट मचाने की आज्ञा न दे दें तो हम कहीं के भी नहीं रहेंगे। यह समस्या हमारे सामने बड़ी विकट उपस्थित होगी और इसी पर विचार करने के लिए मैंने आप लोगों को कष्ट दिया'''।

मन्त्री कुछ और भी कहने जा रहे थे कि कहीं से बादल के गरजने के समान आवाज़ आई—तुम्हारी आशंका निराधार है मन्त्री। महाराज चन्द्रदीपसिंह तुम्हारे राजा की तरह अन्यायी नहीं है कि वे तुम्हारे राज्य में 'कत्ले आम' मचाने की आज्ञा दे दें। उनकी ओर से तुम निश्चिन्त रहो। वे तुम्हारे राज्य को हाथ भी न लगायेंगे।

यह आवाज़ सुनकर सभी चौंक पड़े। उस कमरे में पूर्व की ओर एक ऊंची-सी आलमारी रखी हुई थी। उस आलमारी के पीछे से यह आवाज़ आई थी। मन्त्री आदि उसी आलमारी की ओर बढ़े। इतने में पुनः आवाज़ आई—खबरदार! इधर मत आना।

मन्त्री आदि ठिठककर खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि आलमारी के पीछे से एक बड़ा ही भयंकर लम्बा-सा काला हाथ धीरे-धीरे निकल रहा है। वह हाथ मनुष्य का नहीं था, वरन् किसी भयंकर वनमानुष का मालूम होता था। आलमारी से निकला हुआ वह हाथ घुटने तक बाहर निकल आया और तब उसके हाथ की हथेली खुल गई। सबने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखा कि उस चमकती हुई हथेली पर एक चक्राकार गुदना गुदा हुआ है। उस गुदना को देखकर मन्त्री आदि जितने भी प्राचीन कर्मचारी वहां थे, सभी चौंक उठे। सबों ने उस चिह्न को देखकर नम्रता से अपना सिर झुकाया, तत्पचात् मन्त्री बोला—हैं यह मैं क्या देख रहा हूं? अपने पुराने राजवंश का चिह्न है?

आलमारी के पीछे से पुनः आवाज़ आई—इस चिह्न को पहचानते हो?

मन्त्री बोला—भला अपने अन्नदाता को न पहचानूंगा?

आवाज़—इसकी आज्ञा मानोगे?

मन्त्री—मैं अपने महाराज की आज्ञा मानने को प्रस्तुत हूं, कहिए क्या आज्ञा है!

आवाज़—मैं तुमसे कुछ बातें रसिकरसाल के विषय में करना चाहता हूं। उस दुष्ट ने तुम लोगों की आंखों में धूल झोंककर अपने

मालिक महाराज इन्द्रसेन को मार डाला था उनके एक लड़के को न जाने कहां गायब करके स्वयं गद्दी पर बैठ गया था। क्या तुम महाराज इन्द्रसेन की मृत्यु के विषय में कुछ जानते हो।

मन्त्री—केवल इतना ही कि महाराज इन्द्रसेन को महारानी कलावती ने मार डाला था, तत्पश्चात् अपने बड़े बेटे विजयसिंह को लेकर न जाने कहां भाग गई थीं। यह बात स्वयं रसिकरसाल ने मुझसे कही थी। यदि हम लोग उस समय यह बात जान पाते तो दुष्ट रसिकरसाल को कच्चा ही चबा जाते।

आवाज—मैं उसे तुम लोगों के हवाले कर सकता हूं, मगर एक शर्त पर। वह यह कि तुम लोग उसे सुरक्षित कैदखाने में रखकर उसकी हिफाजत करो और मेरी ओर से राजकाज चलाओ।

मंत्री ने उस चक्राकार गुदने के आगे सिर झुकाकर कहा—जो आज्ञा सरकार की।

आवाज—लो! इस आलमारी के पीछे रसिकरसाल बेहोश पड़ा है। इसे ले जाकर बन्दीगृह में रखना और कठोर यातना देना, परन्तु जान लेने का प्रयत्न न करना। मैं पन्द्रह दिनों में तुम्हारे पास आ जाऊंगा।

धीरे-धीरे वह भयंकर हाथ आलमारी के पीछे जाकर थोड़ी ही देर में लुप्त हो गया। आलमारी के पीछे से एक धड़ाके की आवाज हुई बहुत-सा धुआं दीख पड़ा। मंत्री आदि तेजी के साथ उधर भागे। पास जाकर देखा कि रसिकरसाल भूमि पर बेहोश पड़ा है और वहां पर कोई भी नहीं है?

मंत्री बोले—बड़ी ही आश्चर्य की बात है। यह बोलने वाला व्यक्ति एकाएक कहां लुप्त हो गया? उसके हाथ को देखने से यही मालूम होता था कि वह हाथ किसी भारी बनमानुष का है। परन्तु उस बनमानुष की हथेली पर वह चिन्ह—वह चक्राकार गुदना—कहां से आया? कुछ समझ में नहीं आता। फिर भी उस मनुष्य ने जो कुछ कहा है, हमें उसके अनुसार करना ही होगा। उस चिन्ह को देखकर मेरी यहां धारणा हो रही है कि पुराने राजघराने का कोई व्यक्ति अभी तक जीवित है। वह व्यक्ति कौन है? महाराज इन्द्रसेन हैं, या राजकुमार विजयसिंह हैं या महारानी कलावती हैं—कुछ समझ में नहीं आता।

विजयसिंह अपने 'तन्त्रगृह' में अर्थात् उसी काले कमरे में बैठा हुआ है। सामने ही मेज पर रखा हुआ 'प्लानचेट' दिखाई पड़ रहा है। मेज पर कल-पुरजे इस समय निश्चल पड़े हैं। विजयसिंह एक आराम-कुरसी पर लेटा हुआ कुछ सोच रहा है। इस समय उसकी भावभंगिमा कुछ विचित्र ही प्रकार की है।

एकाएक उस कमरे में रज्जन ने घबड़ाए हुए प्रवेश किया और लड़खड़ाती हुई जबान से बोला—गजब हो गया सरकार! 'खून के प्यासे' ने अपने दलबल के साथ चढ़ाई कर दी है। वह आँगन वाले कमरे तक आ गया है। उसके साथ पच्चीस शागिर्द भी हैं।

विजय—तुम चिन्ता न करो। उस दुष्ट की क्या मजाल कि मेरे रहते हुए यहां उत्पात मचा सके। तुम जाओ और मेरी मां को लिवाकर जल्दी आओ।

रज्जन—बहुत अच्छा सरकार!

रज्जन दौड़ता हुआ कोठरी से बाहर हो गया। विजय सोचने लगा यह दुष्ट 'खून का प्यासा' अब बेतरह मेरे पीछे पड़ गया है। अब बिना इसे यमलोक पहुंचाए मैं चैन न लूंगा। विजय यह सब सोच रहा था कि रज्जन उसकी मां को लिए आ पहुंचा। उसकी मां ने कहा—मुझे क्यों बुलाया बेटा?

विजय—मां 'खून का प्यासा' आज हमारे स्थान में गुप्त रीति से अपने दलबल के साथ चढ़ आया है अब तुम मुझे क्या आज्ञा देती हो?

मां—बेटा जो उचित समझ में आवे, वही करो।

विजय—मां! अब मैं इस दुष्ट को यमलोक भेज देना चाहता हूं। अच्छा मां! जाओ, कुर्सी पर बैठ जाओ। मैं 'प्लानचेट' द्वारा यह देखना चाहता हूं कि 'खून का प्यासा' इस समय हमारे मकान के किस भाग में उपस्थित है और क्या कर रहा है?

विजय की मां आकर कुर्सी पर बैठ गई। विजय ने मेज पर के कल-पुरजे ऐंठ दिए, साथ ही उस 'प्लानचेट' के तारों में एक विचित्र कम्पन हुआ और 'प्लानचेट' का रंग बदलने लगा। विजय मन ही मन कुछ मंत्र पढ़ने लगा। बोला—मैं तुम पर प्रसन्न हूं पवित्र आत्मा कि तुमने रघुवंश की आत्मा में प्रवेश कर मेरे कार्य को सफल बनाया। इस समय 'खून के प्यासे' ने मुझ पर चढ़ाई कर दी है। तुम कृपा करके इस 'प्लानचेट' पर यह दिखाओ कि वह इस समय मेरे मकान

के किस भाग में है और क्या कर रहा है।

कोने में दीपशिखा पुनः जल उठी और धीरे-धीरे 'प्लानचेट' की ओर बढ़ी। 'प्लानचेट' के पास आकर दीपशिखा रुक गई। 'प्लानचेट' पर एक चित्र का प्रादुर्भाव होने लगा। विजय ने देखा कि एक बड़ा-सा कमरा है, जिनमें एक दरवाजे को छोड़कर और कोई दरवाजा नहीं है। उसकी दीवारों में जमीन से गज भर की ऊंचाई पर पचीसों आलमारियां बनी हुई हैं जिनके पल्ले इस समय बन्द हैं। 'खून का प्यासा' पचीस शागिर्दों के साथ इसी कमरे में उपस्थित है और एक आलमारी के सामने खड़ा हुआ सोच रहा है।

'प्लानचेट' पर यह दृश्य देखकर विजय बोला—मां ! देखो 'खून का प्यासा' आंगन वाले कमरे तक पहुंच गया है। अच्छा, अब मैं उसे फंसाने का प्रयत्न करता हूं—इतना कहकर विजय कुर्सी पर से उठा और दाहिनी ओर की दीवार के पास जाकर कोई खटका दबाया। पुनः आकर 'प्लानचेट' की ओर देखने लगा। 'प्लानचेट' पर सबों ने देखा कि विजय के खटका दबाते ही उस आलमारी के पल्ले जिसके पास 'खून का प्यासा' खड़ा हुआ था, झोंके के साथ खुले गए और उसमें से हवा का इतना तीव्र खिंचाव उत्पन्न हुआ कि 'खून का प्यासा' अपने को संभाल न सका और खिंचाव के साथ वह भी खिंच-कर आलमारी के भीतर चला गया, साथ ही उस आलमारी के पल्ले अपने आप बन्द हो गये।

यह देखकर विजय हर्षित होकर बोला—मां ! मैंने अपने शत्रु 'खून के प्यासे' को छुरों वाली कोठरी में कैद कर दिया है।...अच्छा ! अब मैं उसके शागिर्दों को भी ठिकाने लगाता हूं।

विजय पुनः कुर्सी पर से उठा और कोई खटका दबाया। इस समय 'खून के प्यासे' के शागिर्द अपने गुरु के इस प्रकार गायब हो जाने पर आश्चर्य कर रहे थे कि उस कोठरी का फर्श, जहां वे सब खड़े थे, न जाने कहां गायब हो गया और उसकी जगह निकल आया एक भयानक अग्निकुण्ड। अग्निकुण्ड में प्रज्वलित अग्नि धधक रही थी। 'खून के प्यासे' के सब शागिर्द उसी अग्निकुण्ड मे गिर पड़े।

विजय ने उठकर पुनः कोई खटका दबाया, साथ ही उस कमरे का फर्श जो गायब हो गया था पुनः आकर अपने ठिकाने लग गया और उस प्रचण्ड अग्निकुण्ड को लोप कर दिया।

• • •

जिस समय हवा के खिंचाव के कारण 'खून का प्यासा' आलमारी

से अन्दर चला गया। उस समय हवा की तेजी से कुछ गश-सा आ गया। फिर पूर्णतया शान्त हो जाने पर 'खून के प्यासे' ने देखा कि वह इस समय एक बहुत ही छोटी कोठरी में है, जिसमें मुश्किल से चार आदमियों के बैठने की जगह है। थोड़ी देर और बीत जाने पर 'खून का प्यासा' भूमि पर से उठ खड़ा हुआ और अपने चारों ओर देखने लगा, परन्तु वहां की दीवालों में दरवाजे का कहीं चिह्न तक नहीं था। एकाएक 'खून के प्यासे' की दृष्टि ऊपर छत की ओर गई। उस कोठरी की छत में दो इंच की दूरी पर सैकड़ों छुरे लगे हुए हैं, जिनकी चमचमाती हुई नोंक नीचे जमीन की ही ओर है। उन छुरों को देखकर 'खून का प्यासा' कांप उठा।

एकाएक 'खून के प्यासे' ने सोचा कहीं उस कोठरी में अधिक देर तक रुके रहने पर कोई विपत्ति न आ जाए। इतने में ही उसकी दृष्टि दक्खिन की ओर दीवार में लगे हुए एक विचित्र यन्त्र पर पड़ी। उस यन्त्र के ऊपर एक तख्ती लगी हुई थी और उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

'यदि बाहर जाना चाहते हो तो, इस यंत्र को घुमाओ'

यह सब बातें तथा 'खून के प्यासे' की सब भावभंगिमा विजयसिंह, उनकी मां तथा रज्जन आदि 'प्लानचेट' के पास बैठे हुए देख रहे थे। 'प्लानचेट' पर इस समय उसी छुरों की छत वाली कोठरी का दृश्य अंकित था, जिसमें इस समय 'खून का प्यासा' था। विजय बोला—मां यह छुरों वाली कोठरी भी विचित्र है! जो भी कैदी इसमें बन्द किया जाता है वह अपने हाथों ही अपना प्राण खो देता है।

मां—वह कैसे बेटा!

विजय—जो भी कैदी इसमें रहेगा वह इस लिखावट को अवश्य पढ़ेगा। पढ़ते ही वह कोठरी से बाहर निकल जाना चाहेगा और उस तख्ती के लिखावट के अनुसार उस यन्त्र को घुमा देगा। उस यन्त्र के घुमाते ही यह छुरों वाली छत धीरे-धीरे नीचे उतरने लगेगी और उतरते-उतरते जमीन के साथ सट जाएगी। छुरे कैदी के अंग-प्रत्यंग में घुस कर उसे छलनी कर देंगे और वह बिलख-बिलख कर अपना प्राण विसर्जन कर देगा।

जब 'खून का प्यासा' तख्ती पर की लिखावट को पढ़ चुका तो उसके हर्ष का पारावार न रहा। उसने झट से उस यन्त्र को घुमाया और दरवाजे खुलने की आहट लेने लगा। एकाएक जोरों की अंगड़ाई लेते समय उसका हाथ ऊपर की ओर चला गया परन्तु तुरन्त ही

कि 'छुरा वाली छत' धीरे-धीरे नीचे की ओर आ रही है।

'खून का प्यासा' सर पर हाथ रखकर भूमि पर बैठ गया और आंखों से आंसू बहाने लगा।

विजय 'प्लानचेट' के पास बैठा हुआ यह सब हाल देख रहा था। वह बोला मां! देखो तो आज मेरा महान् शत्रु इस समय विवश होकर पड़ा है, और विकराल छुरे उसे ग्रसने के लिए नीचे उतरे आ रहे हैं। आज मेरे मार्ग का कंटक सदैव के लिए दूर हो जाएगा।

मां—बेटा! आज न जाने क्यों मेरा मन उद्विग्न हो रहा है। मेरे हृदय में भयानक अशान्ति मची हुई है। मेरी छाती फटी जा रही है। मैं प्रलयंकर दृश्य नहीं देख सकती बेटा! तुझ पर आज शैतान सवार है तभी तो तू एक वीर को मार रहा है।

विजय—मां! तुम व्यर्थ ही अपनी निर्बलता प्रकट कर रही हो। मेरा कोई कार्य न्याय के विरुद्ध नहीं है। जरा इस 'प्लानचेट' की ओर तो देखो, ये रक्तपिपासित छुरे किस प्रकार धीरे-धीरे 'खून के प्यासे' के शरीर की ओर उसका लहू चाटने के लिए अग्रसर हो रहे हैं। कैसा सुन्दर दृश्य है मां! तुम उधर कहां ताक रही हो?

मां—मैं इस अनिष्टकारी दृश्य को नहीं देख सकती बेटा! पैशाचिक कार्य को देखने की मुझमें शक्ति नहीं?

विजय बोला—नहीं मां? एक बार—केवल एक बार इस 'प्लानचेट' की ओर देखो। इस समय छुरे 'खून के प्यासे' के शरीर में घुसना ही चाहते हैं।

विजय की मां ने एक बार पुनः 'प्लानचेट' पर दृष्टिपात किया परन्तु तुरन्त ही चीखकर अपनी आंखें बन्द कर लीं। इस समय छुरे 'खून के प्यासे' के शरीर से लगभग एक-दो इंच की दूरी पर थे और कुछ देर में उसका वारा-न्यारा हो जाने वाला था। विजय की मां हांफती हुई बोली—उफ! बेटा! छोड़ दे इस बेचारे को न जाने क्यों देखकर मेरा कलेजा बैठा जा रहा है।

विजय—मां सुनो! मैं तुम्हें एक बात सुनाता हूं। यह बात मैंने तुम से आज तक कभी नहीं कही थी और कहने का अवसर भी नहीं मिला था। आज मैं उसी अद्भुत बात को तुम्हें सुनाता हूं। आश्चर्य की बात यह है कि उसकी सूरत बिल्कुल मेरी ही जैसी है!

यह बात सुनते ही विजय की मां चौंक उठी बोली—बिल्कुल

तुम्हारी तरह !

विजय—हां मां ! मेरी और उसकी सूरत में जरा भी अन्तर नहीं है। यदि मैं उसके साथ तुम्हारे सामने खड़ा हो जाऊं तो तुम मुझे कदापि न पहचान सकोगी।

मां—बेटा !...बेटा ! मुझे कुछ सन्देह हो रहा है, अच्छा ! यह तो बताओ कि गुरुवर गुप्तनाथ ने 'खून के प्यासे' के विषय में तुमसे क्या कहा था ?

विजय—केवल इतना ही कि वह उन्हें दो वर्ष की ही अवस्था में कहीं जंगल में पड़ा हुआ मिला था और तभी से उसका पालन-पोषण कर रहे थे।

ज्यों-ज्यों ये बातें विजय की मां सुनती जाती थी, उसकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी। प्राचीन स्मृति के चिन्ह उसकी आंखों के सामने नाच रहे थे। वह उतावली के साथ बोली—अच्छा बेटा ! क्या तुम 'खून के प्यासे' का असली नाम भी जानते हो ?

विजय—जानता हूं मां उसका असली नाम दुर्जयसिंह है। वही नाम 'खून के प्यासे' की कलाई पर गुदने की तरह गुदा हुआ था।

यह सुनते ही विजय की मां उछल पड़ी। उसकी दशा विचित्र थी। वह हांफती हुई बोली—ओह भगवान् ! नहीं जानती थी कि मुझे यह सुख का दिन भी देखना होगा।...बेटा विजय ! मैं समझ गई। अब तुम इन छुरों का नीचे उतरना रोक दो मेरे लाल ! मेरे मन में एक बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हो गया है।

वह कौन है। बेटा ! मेरा कहना मान। तुझे मेरे खून की क़सम—तू इन छुरों को रोक दे—अभी रोक दे।

विजय ने 'प्लानचेट' की ओर देखा। विकराल छुरे 'खून के प्यासे' के शरीर में १/४ इंच घुस चुके थे। विजय दौड़ता हुआ दीवाल के पास गया और एक खटका दबा दिया तुरन्त ही 'छुरों वाली छत' ऊपर उठने लगी। छुरों की रक्तरंजित नोंकें, जो कि एक इंच तक 'खून के प्यासे' के शरीर में घुस चुकी थीं, धीरे-धीरे उसके शरीर में से निकल आईं और ऊपर चढ़ने लगीं। थोड़ी ही देर में छत पुनः अपने स्थान पर जाकर रुक गई।

विजयसिंह की साधित प्रेतात्मा अभी तक उस कमरे में उपस्थित थी विजय ने कहा—पवित्र आत्मा ! अब तुम जा सकते हो।

इतना कहकर विजयसिंह अपनी मां को लिए तेजी के साथ उस कमरे से बाहर हो गया। एक जगह एक चिकनी दीवाल के पास आकर

वह रुका और उसने न जाने कौन-सा खटका दबाया कि उस चिकनी दीवाल में एक खुला दरवाजा दिखाई पड़ने लगा। विजय अपनी मां के साथ उसी दरवाजे में घुसा। सामने ही भूमि पर बेहोश 'खून का प्यासा' पड़ा था। विजय की मां ने आगे बढ़कर 'खून के प्यासे' के भयंकर नकाब उलट दी और ध्यानपूर्वक उसका सुन्दर मुख देखने लगी। थोड़ी ही देर बाद गम्भीर वाणी में बोली—वही है। बिल्कुल वही।

तत्पश्चात् 'खून के प्यासे' की कलाई देखी। उस पर छोटे-छोटे अक्षरों में 'दुर्जनसिंह' गुदा हुआ था।

इस समय विजय अपनी मां के कार्यों को देखकर महान् आश्चर्य कर रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि 'खून के प्यासे' को उसकी मां पहले ही से कैसे जानती है। उसकी मां ने 'खून के प्यासे' का दाहिना हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसकी हथेली पर कुछ देखने लगी। थोड़ी देर बाद वह बोली—ज़रा अपना दाहिना हाथ इधर करो विजय।

विजय ने अपना दाहिना हाथ मां के सामने कर दिया। उसकी मां ने उसकी हथेली पर भी कुछ देखा, तत्पश्चात् उसकी हथेली को 'खून से प्यासे' की हथेली के बगल में कर दिया और बोली—देख बेटा विजय अपनी हथेली को भी देख और इस 'खून के प्यासे' की हथेली को देख।

विजय ने पहले अपनी हथेली पर दृष्टि डाली, जिस पर एक चक्राकार गुदना गुदा हुआ था। तत्पश्चात् उसकी दृष्टि 'खून के प्यासे' की हथेली की ओर गई। वह चौंक उठा। 'खून के प्यासे' की हथेली पर भी वैसा ही चक्राकार गुदना गुदा हुआ है, जैसा कि स्वयं उसकी हथेली पर गुदा था।

मां इस 'खून के प्यासे' के हाथ पर हमारे वंश परम्परा का चिन्ह कहां से आया।

इस समय विजय की मां की विचित्र हालत थी। उसकी आंखों से अविरल आंसू बह रहे थे। विजय की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। वह बोला—मां ! बोलो तुम क्यों रो रही हो ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। मां, जल्द मुझे बताओ, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगा ! सचमुच पागल हो जाऊंगा।

मां ने कहा—बेटा !...यह तेरा छोटा भाई है।

३०

एक गद्देदार पलंग पर 'खून का प्यासा' लेटा हुआ है। छुरों के जख्मों पर पट्टी बंधी हुई है। पास ही विजय और उसकी मां तथा रज्जन आदि भी उपस्थित हैं। विजय ने 'खून के प्यासे' के घावों पर एक अचूक दवा बांध दी है, जिससे उसके प्राण जाने का कोई भय नहीं रह गया है। फिर भी 'खून के प्यासे' को अभी तक होश नहीं आया है।

विजय--मां! यह तुम क्या कह रही हो? क्या यह दुर्जयसिंह मेरा भाई है?

मां--हां बेटा, यह तेरा भाई है--सहोदर भाई!

विजय--लेकिन मां यह कैसे हो सकता है कि यह दुर्दान्त डाकू मेरा भाई हो?

मां--बेटा! इसके हाथ पर चक्राकार गुदने को देखकर तथा इसकी सूरत का अवलोकन कर मुझे सारी अतीत की घटनाएं याद हो आई हैं। यह मेरा वही बेटा है, जो अन्तःपुर से उस समय गायब कर दिया गया था, जब तुम और तुम्हारे पिता जंगल में शिकार को गए थे। उस समय वह केवल दो ही वर्ष का था। यद्यपि उस जमाने को व्यतीत हुए आज लगभग बीस साल हो गए हैं फिर भी माता अपने पुत्र को पहचानने में भूल नहीं कर सकती बेटा!

विजय--मां! अब मैं समझ गया कि यह अवश्य ही मेरा छोटा भाई है, परन्तु यह दुर्जय अभी तक नहीं जानता कि विजयसिंह और 'गरुघंटाल' एक ही व्यक्ति है और सो भी उसका सगा भाई। अतः अभी इसे अपना पूर्ण परिचय दे देना ठीक नहीं होगा मां! ऐसा करने से बाधाएं ही उपस्थित होंगी, क्योंकि यह खंगबहादुर का हितैषी है और मैं उसका प्रबल शत्रु हूं। यदि मैं इसे अभी ही अपना पूर्ण परिचय दे दूंगा तो महाराज खंगबहादुर से--महारानी हेमा की मृत्यु तथा अपने अपमान का प्रतिशोध लेना असम्भव होगा। इसलिए मुझे खंगबहादुर से निपट लेने दो, तब इसे अपना परिचय दूंगा, ऐसा मेरा विचार है। मैं इसे बेहोशी की अवस्था में ही बाहर रखवा देता हूं, ताकि होश में आने पर वह अपने घर चला जाए। जब मैं खंगबहादुर से अपना बदला चुका लूंगा तब बुलाकर इसे अपना परिचय दे दूंगा।

इतना कहकर विजय रज्जन से बोला--रज्जन! 'खून के प्यासे' को ले जाकर उसके घर के समीप पहुंचा देना।

रज्जन ने अदब के साथ सिर झुकाया।

विजय——मां ! अपने भाई का प्रेम मेरे हृदय में कम नहीं है फिर भी मैं कर्तव्यपरायणता से बाध्य होकर दुर्जय को अपने से दूर हटा रहा हूं। लेकिन इससे यह न समझना कि इसकी ओर से बेफिक्र रहूंगा। नहीं मां, आज से इसका सदैव समाचार लेता रहूंगा और इसके ऊपर आने वाली सब विपत्तियों का निवारण करूंगा।

३१

'खून के प्यासे' ने धीरे-धीरे अपनी आंखें खोलीं और अपने चारों ओर देखा। इस समय उसके शरीर में बड़ी पीड़ा हो रही थी। उसका सिर चक्कर खा रहा था। उसने देखा कि इस समय उसका प्रिय शागिर्द प्यारेलाल उसके पलंग के पास उदास बैठा हुआ है। उसकी आंखें आंसुओं से तर हैं। 'खून का प्यासा' अभी-अभी ही बेहोशी से उठा था, अतः उसका दिमाग ठीक से काम नहीं कर रहा था।

उसने एक करवट ली और कराहते हुए कहा——मैं कहां हूं ?

प्यारेलाल बोला——आप अपने गुप्त स्थान में हैं गुरुजी। मैं हूं आपका शागिर्द प्यारेलाल।

'खून के प्यासे' ने एक बार ध्यानपूर्वक प्यारेलाल का मुंह देखा तत्पश्चात बोला——तुम···प्यारेलाल ! मेरी स्मरणशक्ति इस समय काम नहीं कर रही है प्यारेलाल ? तुम्हीं बताओ मुझे क्या हो गया है ? मेरे शरीर में इतनी पीड़ा क्यों है ? मुझे अपनी पुरानी बातें कुछ भी नहीं याद आ रही हैं। क्या तुम मुझे सारी बातें बता सकते हो ?

प्यारेलाल——गुरुजी ! कल आप 'गुरुघटाल' के गुप्तस्थान पर पचीस शागिर्दों के साथ चढ़ाई करने गए थे···

'खून का प्यासा'——हां-हां ! याद आ रहा है···हां ! सब याद आ गया। मैं अपने शागिर्दों के साथ 'गुरुघंटाल' के गुप्तस्थान पर चुपचाप पहुंच गया था, परन्तु उस दुष्ट ने जाने कहां से हम सबको देख लिया और हमारी दुर्गति कर डाली। उफ ! वे विकराल छुरों वाली छत। आश्चर्य ! छत में लगे हुए विकराल छुरे मेरे पास तक पहुंच गए थे। उस समय भय तथा आवेग से मैं मूर्छित हो गया था, उसके बाद आंख खुलने पर मैं अपने को यहां पा रहा हूं। इसका क्या कारण है ? 'गुरुघंटाल' ने स्वयं छोड़ दिया या मेरे रक्षकों ने मेरी जान बचाई ?

इन दोनों में इतनी बातें हो ही रही थीं कि इसी समय रघुवंश भी उस कमरे में आ पहुंचा। इस समय रघुवंश का पागलपन पूर्णतया दूर

हो चुका था, क्योंकि 'गुरुघंटाल' ने अपनी प्रेतात्मा को वापस बुला लिया था। ज्योंही रघुवंश की दृष्टि 'खून के प्यासे' पर पड़ी, वह दौड़कर उसके पैरों पर गिर पड़ा और कातर स्वर में बोला—क्षमा कीजिए गुरुजी ! मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए ?

'खून का प्यासा'—रघुवंश तुम मेरे प्रिय शागिर्द हो। मैं तुमसे अपने लघु भ्राता के समान प्रेम करता हूं। तुम्हारी सुधरी हुई दशा देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हें उसी दुष्ट 'गुरुघंटाल' ने न जाने क्या कर दिया था कि तुम अपने आप तक को भूल गए थे और उसे ही अपना स्वामी समझने लगे थे। देखो ! देखो ! मैं भी उसी के फंदे से छूटकर आया हूं, परन्तु मुझे आश्चर्य तो इतना है कि उसने मुझे सकुशल छोड़ क्यों दिया ? लेकिन अब मैं इस संसार से पूर्णतया ऊब गया हूं। ये सांसारिक माया बंधन मुझे अप्रीतिकर प्रतीत हो रहे हैं। मैं जान गया हूं कि यह संसार मिथ्या है। यहां पर दुःख तथा विपत्ति के सिवा सुख का किंचित भी लेश नहीं है अतः अब मैं अपने इस नश्वर शरीर का अन्त कर देना चाहता हूं। अब मेरे हृदय में कोई भी आकांक्षा नहीं है। मैं आज ही—अभी ही···

रघुवंश—आप यह क्या कह रहे हैं ! अभी आपको संसार में बहुत से कार्य करने हैं। क्या आप भूल गए कि आपके गुरु भाइयों ने आपसे विदा होते समय कहा था कि आप रूपवती की कैद से राजकुमार राजेन्द्रसिंह को अवश्य छुड़ाइयेगा।

'खून का प्यासा'—ओह अब याद आया ! इस बात का तो मुझे जरा भी स्मरण न रहा था। खैर ! मैं राजकुमार राजेन्द्रसिंह को रूपवती की कैद से छुड़ाने के लिए अभी जा रहा हूं। इस कार्य में देरी नहीं कर सकता।

रघुवंश—परन्तु आपकी अवस्था ठीक नहीं है गुरुजी !

'खून का प्यासा' मैं पूर्णतया स्वस्थ हूं रघुवंश ! कर्त्तव्य के आगे अस्वस्थता भाग गई। मैं इसी समय रूपनगर जाना चाहता हूं। मेरी पोशाक लाओ।

'खून का प्यासा' चारपाई से झटके के साथ उठकर खड़ा हो गया और अपने बदन की पट्टियां खोलकर फेंक दीं, तत्पश्चात अपनी भयंकर पोशाक पहनकर तैयार हो गया।

० ० ०

एक कमरे में महारानी रूपवती बैठी हैं। उनके सामने ही एक कुर्सी पर 'खून का प्यासा' भी आसीन है। "खून का प्यासा' कह रहा

है—तुम्हें ऐसा ही करना होगा रूपवती ! मैं तुम्हारे प्रेम पर लात मारता हूं। अगर तुम अपना भला चाहती हो तो शीघ्र ही राजकुमार राजेन्द्रसिंह को हमारे हवाले करो।

रूपवती—'खून के प्यासे !' आज तक मैं तुमसे सदैव नम्रतापूर्वक व्यवहार करती रही, परन्तु अब मालूम हो गया कि मुझे कठोर बनना पड़ेगा। तुम मेरे प्रेम को ठुकरा रहे हो, परन्तु यदि तुम जानते होते कि मुझमें कितनी शक्ति है, तो कभी ऐसा न करते। तुमने मुझे ठुकराकर मेरा अपमान किया है। अब तुम मेरे यहां से बचकर नहीं जा सकते।

'खून का प्यासा'—क्या कहा ?

'खून का प्यासा' कहने ही जा रहा था कि रूपवती ने हाथ बढ़ा कर दीवाल में लगी हुई एक बटन दबा दी। अभी 'खून का प्यासा' संभलने भी न पाया था कि कुर्सी जिस पर वह बैठा था, उसे लिए हुए सर्र से जमीन के अंदर घुस गई। वहां पर एक चौकोर गहरा गड्ढा दिखाई देने लगा। रूपवती यह देखकर धीमे से हंस पड़ी और अपने आप ही कहने लगी—आज यह मेरे फंदे में आया है। अब इससे अवश्य अपनी तृप्ति करूंगी, चाहे मेरा राज्य नष्ट हो जाए। मुझे इसकी परवाह नहीं।

० ० ०

'अपने 'तंत्र गृह' में विजयसिंह तथा उसकी मां बैठे हुए हैं, विजयसिंह कह रहा है—मां ! इस समय न जाने क्यों मेरी बाईं आंख फड़क रही है। क्या कोई अशुभ होने वाला है ?

मां—बेटा आंख तो मेरी भी दाईं फड़क रही है। रह-रहकर मेरा ध्यान दुर्जय की ही ओर खिंचा जा रहा है। ज़रा 'प्लानचेट' पर देख तो बेटा ! कि दुर्जय इस समय किस दशा में है। कहीं उस पर विपत्ति तो नहीं आई ?

विजय तुरन्त उठकर मेज़ के पास आया और उस पर लगे हुए कल-पुर्जे ऐंठ दिए। शीघ्र ही 'प्लानचेट' शीशे-सा चमकने लगा। विजय ने प्रेतात्मा का आह्वान किया और उससे बोला—पवित्र आत्मा ! ज़रा दिखाओ कि इस समय मेरा छोटा भाई दुर्जय कहां है और क्या कर रहा है ?

शीघ्र ही 'प्लानचेट' पर एक दृश्य अंकित हो गया। विजय ने [illegible]वा 'खून का प्यासा' रूपनगर के राजमहल में उपस्थित है और [illegible]ी के सामने कुर्सी पर बैठा हुआ उससे कुछ बातें कर रहा है। [illegible]वती से कुछ देर तक बातें होती रहीं। एकाएक रूपवती ने हाथ

बढ़ाकर खटका दबाया, और वह जिस पर 'खून का प्यासा' था तुरन्त ही भूमि के अन्दर घुस गई।

यह दृश्य देखते ही विजय तथा उसकी मां दोनों चौंक पड़े। विजय बोला—मां दुर्जय पर विपत्ति आ पड़ी है। रूपवती तिलस्म की रानी है, उसने न जाने क्यों दुर्जय को कैद किया है अतः मेरा वहां जाकर दुर्जय की रक्षा करना परम आवश्यक है।

विजय ने प्रेत आत्मा को विदा करके शीघ्र ही 'गुरुघंटाल' की पोशाक पहनी और अन्तर्ध्यान हो गया।

० ० ०

हम ऊपर लिख आए हैं कि रूपवती के खटका दबाते ही वह कुर्सी 'खून के प्यासे' को लिए जमीन के अन्दर घुस गई। यह काम इतनी शीघ्रतापूर्वक हुआ कि 'खून का प्यासा' संभलने भी न पाया कुर्सी कई पुरसे तक जमीन में धंसती ही चली गई तत्पश्चात् एक सजे-सजाये कमरे में आकर रुक गई। कुर्सी के रुकते ही 'खून का प्यासा' तेजी के साथ उस पर से उतर पड़ा और ध्यानपूर्वक उस कमरे को देखने लगा। उसने देखा कमरा खूब सजा-धजा है। पास ही एक गद्देदार पलंग बिछा है, जिस पर कई मखमल के तकिए रखे हैं। एक ओर एक कोने में एक भयंकर पीतल की मूर्ति एक ऊंचे चबूतरे पर बैठाई हुई है। अचानक उसने देखा कि उस निर्जीव पीतल की मूर्ति ने अपनी बंधी हुई मुट्ठियां एक-एक खोल दीं और उसकी चमचमाती हुई हथेलियों पर दो शक्लें दृष्टिगोचर होने लगीं। वे शक्लें स्वयं 'खून के प्यासे' की ही थीं। एक में वह अपने नकाब तथा लबादा आदि के साथ था और दूसरे में उसकी असली सूरत दिखाई पड़ रही थी ! 'खून का प्यासा' यह देखते ही चौंक उठा और धीरे-धीरे मूर्ति के पास तक चला गया। कुछ देर तक तो वह उसकी हथेली पर बनी हुई अपनी शक्लों को ध्यानपूर्वक देखता रहा, तत्पश्चात् उसने अपना हाथ बढ़ाकर उसकी हथेली छू ली। परन्तु उसकी हथेली छूते ही 'खून के प्यासे' के शरीर में एक कड़ा झटका लगा और वह 'आह' करके वहीं गिर पड़ा। उसकी चेतनाशक्ति जाती रही।

'खून के प्यासे' के बेहोश होते ही उस चबूतरे पर, जिस पर वह मूर्ति बैठी हुई थी, पिछला हिस्सा धीरे-धीरे खुल गया और उसमें से दो भयानक मनुष्य निकले। उनके शरीर का रंग एकदम पीतल-सा था। उनकी लम्बाई भी मनुष्य की लम्बाई से दूनी थी, उनकी मुखाकृति बड़ी ही भयानक थी। उनके हाथ पैर खूब मोटे तथा बेडौल थे।

वे दोनों दानव बेहोश 'खून के प्यासे' के पास आकर रुक गए।

उनमें से एक बोला—यही है ?

दूसरे ने उत्तर दिया—हां-हां यही है। चटपट इसकी पोशाक उतार लो और यहां से चल दो। अब प्रलय आने ही वाली है। ज्योंही रूपवती इस मनुष्य को हाथ लगाएगी, त्योंही राज्य भर में प्रलय मच जाएगी। हमारे प्रभु रूपवती को तथा साथ ही इस मनुष्य को भी जलाकर भस्म कर देंगे। हमें इस मनुष्य की पोशाक उतारने की इसलिए आज्ञा दी गई है कि इसकी कमर से लटकते हुए छुरे तिलस्मी हैं और तब तक हमारे प्रभु इसे भस्म न कर सकेंगे।

पहला—परन्तु 'रक्त-मन्दिर' के पुजारी तथा 'दानव-देश' के राजा का कहना है कि रूपवती की जान तो अवश्य जाएगी, लेकिन इस मनुष्य की जान नहीं जाएगी, क्योंकि ज्योंही हमारे प्रभु रूपवती को भस्म कर देने के पश्चात् इस मनुष्य को जलाने चलेंगे, त्योंही यहां एक शक्ति-शाली आदमी आ पहुंचेगा और वही इसको बचा लेगा। वह मनुष्य इतना शक्तिशाली होगा कि हमारे प्रभु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे और तब वही मनुष्य 'रक्त-मन्दिर' के अगम कोष का अधीश्वर तथा हमारी भूमि अर्थात् 'दानव-देश' का राजा होगा।

दोनों में इतनी ही बातें होने पाई थीं कि उस कोठरी के बाहर कुछ खटका हुआ। खटके की आवाज़ सुनते ही दूसरा दानव बोला—अद्रज इसकी पोशाक जल्द उतार लो और चल दो। मालूम होता है कि रूप-वती आ रही है।

पहले ने कहा—बहुत अच्छा !

और उसने जल्दी-जल्दी 'खून के प्यासे' की कुल पोशाक उतार ली। काला लबादा, भयंकर नकाब, छुरों वाली पेटी तथा मशीनों वाला मोजा तत्पश्चात् दोनों दानव चबूतरे के पीछे जाकर लुप्त हो गए। उनके लुप्त हो जाने के दो ही मिनट बाद रूपवती ने उस कमरे में प्रवेश किया परन्तु 'खून के प्यासे' को भूमि पर बेहोश पड़ा हुआ देखकर चौंक पड़ी। बोली—हैं ! इसे बेहोश किसने किया और इसकी पोशाक क्या हुई ! क्या इस कमरे में कोई दूसरा मनुष्य भी मेरे आने के पहले ही जा चुका था।

रूपवती आगे बढ़ी और 'खून के प्यासे' के पास जाकर खड़ी हो गई और उसने उसे उठाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया कि इसी समय उसकी दाहिनी आंख जोरों से फड़क उठी। साथ ही पृथ्वी भी कांप उठी और उस पीतल की मूर्ति के मुख से एक भयावनी आवाज़ निकली—मत छूना !

रूपवती ने डरकर अपना हाथ खींच लिया । मूर्ति पुनः कर्कश स्वर में बोली—मत छूना ! प्रलय मच जाएगी छूने से—मत छूना !

रूपवती ने मूर्ति की ओर देखा और दांत पीसती हुई बोली—प्रलय मचेगी तुम्हारा सिर ! अब मैं कुछ नहीं सुन सकती । मैं पागल हो गई हूं ।

रूपवती ने आगे बढ़कर 'खून के प्यासे' को उठा लिया और ले जाकर पलंग पर लिटा दिया। इस समय 'खून का प्यासा' गहरी बेहोशी में था । मूर्ति एक बार पुनः अपने कर्कश स्वर में बोली—प्रलय आना चाहती है रूपवती । अब भी समय है। सम्भल जा । तेरे पूर्व जन्म का श्राप इस समय प्रतिफलित होने वाला है । सुन ! पूर्व जन्म में रुद्रपुर की रानी थी और वह 'खून का प्यासा' एक गरीब किसान का बेटा था । उस समय में भी तू इसी प्रकार दुराचारिणी थी । एक दिन तूने इसे देख लिया और इसे पाने के लिए पागल हो उठी । यह तेरी प्रजा थी, अतः तूने इसे पकड़वा मंगवाया परन्तु वह तुम्हारी तुष्टि करने पर राजी न हुआ । अन्त में क्रोधित होकर तुमने इसकी जान ही ले ली । उस समय मरते हुए इसने तुझे श्राप दिया था कि जा ! जिस प्रकार इस जन्म में तू मेरे लिए पागल हो उठी है और मेरे प्राण ले रही है, उसी प्रकार अगले जन्म में भी तू मेरे लिए पागल होगी और मेरे ही कारण तेरा राजपाट तथा स्वयं ही तू भी नष्ट हो जाएगी । रूपवती! यही पूर्व जन्म का श्राप इस समय तुझ पर छाया हुआ है । यदि तू अपना भला चाहती है तो 'खून के प्यासे' को हाथ न लगा, नहीं तो मुझे बाध्य होकर तुझे भस्म कर देना होगा और साथ ही इस 'खून के प्यासे' को भी ।

मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहती । तुम्हें जो कुछ करना हो, कर लो । मुझे इसकी परवाह नहीं ।

रूपवती आगे बढ़कर 'खून के प्यासे' के पास बैठ गई । उसी समय पृथ्वी के भीतर से गड़गड़ाहट की आवाजें आने लगीं । पृथ्वी जोरों से हिलने लगी । चारों ओर हो हल्ला मच गया । इतने में ही एक दासी घबड़ाई हुई रूपवती के पास आई और बोली—गजब हो रहा है । राज्य भर में प्रलय मच गई है । भयानक भूचाल आ गया है । शहर के सब मकान धड़ाधड़ गिर रहे हैं ।

रूपवती डपट कर बोली—चुप रह ! चली जा यहां से ।

दासी चली गई । रूपवती ने बेहोश 'खून के प्यासे' को अपने कलेजे से दाब लिया । इस समय उसकी दशा ठीक पागलों की-सी हो रही थी । उधर राज्य-भर में प्रलय मच गई थी । भूचाल के कारण

शहर के सब मकान गिरकर चकनाचूर हो रहे थे। जमीन के भीतर से भयानक गड़गड़ाहट की आवाजें आ रही थीं।

रूपवती इस समय अपने आप को भूल गई थी! वह अपनी कुवासनाओं की पूर्ति करना चाहती थी। इसी समय भूमि के नीचे से एक भयानक गड़गड़ाहट की आवाज़ हुई और उस पीतल की मूर्ति ने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। तीसरा नेत्र खुलते ही उसमें से एक भयानक ज्वाला निकली। धीरे-धीरे यही ज्वाला रूपवती की ओर बढ़ने लगी और पास जाकर उसके कलेजे में घुस गई, साथ ही एक भयानक चीत्कार की आवाज़ हुई और दूसरे ही क्षण जहां रूपवती थी, वहीं राख की ढेरी दीख पड़ने लगी।

रूपवती के भस्म हो जाते ही वह भयानक मूर्ति हंस पड़ी और बोली—पापिन का अन्त हो गया परन्तु अब मुझे इस निरपराध को भी भस्म करना होगा, क्योंकि मुझे ऐसी ही आज्ञा दी गई है।

मूर्ति के तीसरे नेत्र से पुनः ज्वाला निकली और धीरे-धीरे 'खून के प्यासे' की ओर बढ़ने लगी। परन्तु इसी समय उस कमरे में एक धड़ाके की आवाज़ हुई और वही दुर्दान्त 'गुरुघंटाल' ने भी उस ज्वाला को 'खून के प्यासे' की ओर बढ़ते देखा और तुरन्त ही इसका मतलब समझ गया—इसलिए वह शीघ्रतापूर्वक 'खून के प्यासे' तथा इस ज्वाला के बीच में आकर खड़ा हो गया। इतने में ही उस पीतल की मूर्ति ने भयानक आवाज़ में कहा—कौन है? हट जा रास्ते में से। काल का ग्रास न बन!

'गुरुघंटाल' बोला—भयानक मूर्ति! तुम मेरे भाई को किसी प्रकार भस्म नहीं कर सकतीं। मूर्ति! तुम मुझ पर रोब जमाने का प्रयत्न न करो। मैं तुम जैसी न जाने कितनी तिलस्मी मूर्तियों को रास्ता दिखा चुका हूं। मैं तुम्हारे रास्ते से नहीं हट सकता। तुम्हें जो कुछ करना हो कर लो।

मूर्ति—अच्छा! ले तू भी भस्म हो जा।

मूर्ति के नेत्र से निकली हुई भयानक ज्वाला आकर 'गुरुघंटाल' के हृदय में घुस गई, परन्तु वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा। यह देखकर वह मूर्ति आश्चर्य के साथ बोल उठी—आश्चर्य। इसके बाद दूसरी, फिर तीसरी और चौथी—इसी प्रकार उस मूर्तिके नेत्रसे सैकड़ों ही ज्वालाएं निकलकर 'गुरुघंटाल' के हृदय में घुस गईं परन्तु 'गुरुघंटाल' का कुछ भी न बिगड़ा। यह देखकर पीतल की मूर्ति बोली—शाबाश बहादुर! मुझे मालूम हो गया कि तुम कौन हो। फिर भी मैं तुम्हारे मुख से

तुम्हारा नाम सुनना चाहता हूं।

'गुरुघंटाल'—मेरा नाम विजयसिंह है।

मूर्ति—अहा विजयसिंह ! तुम्हारी ही प्रतीभा में मैं यहां बैठाया गया हूं आज हजारों वर्षों से मैं यहां बैठा हुआ तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। यदि तुम मेरे कथनानुसार कार्य करोगे तो मैं तुम्हें एक दूसरी ही दुनिया में पहुंचा दूंगा—मैं तुम्हें एक ऐसे देश में ले चलूंगा, जहां पर सोने के मकान हैं और मोतियों की वर्षा होती है। वह देश 'दानवदेश' कहलाता है। उसी 'दानवदेश' में 'रक्त मन्दिर' नामक एक मन्दिर है। उस मन्दिर में अगम धन गड़ा हुआ है और उसके अतुल तल में हजारों छेद छिपे हैं। तुम वहां जाकर उस मन्दिर का भेद खोलना और उसके अगम धन पर अपना अधिकार जमाकर वहां का राजा बनना परन्तु यह सब तभी होगा, जब तुम मेरी इच्छानुसार चलोगे।

'गुरुघंटाल'—मैं तुम्हारी बातें मानने को पूर्णतया प्रस्तुत हूं।

'गुरुघंटाल' 'खून के प्यासे' को गोद में लिए हुए आगे बढ़ा। एक खम्भे के पास पहुंचते ही उसके कानों में किसी के कराहने की आवाज आई। वह रुक गया और उस कराहने की आवाज को ध्यानपूर्वक सुनने लगा। वह विशाल खम्भा इस समय भूमि पर गिरा हुआ था और उसी के नीचे कराहने की आवाज आ रही थी 'गुरुघंटाल' ने 'खून के प्यासे' को भूमि पर लिटा दिया और आप उस खम्भे को उलट दिया। उसने देखा कि एक सुन्दर नवयुवक उसके नीचे दबा पड़ा है। 'गुरुघंटाल' ने उस युवक को पीठ पर लाद लिया और 'खून के प्यासे' को बगल में दाब कर आगे बढ़ा।

३३

एक सजे हुए कमरे में विजय, उसकी मां तथा दुर्जयसिंह बैठे हुए हैं उसके सामने ही एक कुरसी पर वह सुन्दर नवयुवक भी आसीन है जिसे 'गुरुघंटाल' (बिजयसिंह) ने उस विशाल खम्भे के नीचे से निकाला था। इस समय विजय तथा दुर्जय—दोनों अपने-अपने रूप में हैं। विजय उस सुन्दर नवयुवक से कह रहा है—महाशय आपने अभी तक अपना परिचय देने की कृपा नहीं की। मैं अभी तक यह नहीं जाना कि आप रूपनगर के कौन से व्यक्ति हैं, जो उस भयंकर प्रलय से जीवित बच गए हैं।

वह सुन्दर युवक बोला—भाई ! मैं रूपनगर का निवासी नहीं

हूं। एक दुखिया राजकुमार हूं, जिसे रूपवती अपनी कुवासनाओं का शिकार बना कर कैद कर लिया था। आपने कदाचित सोनपुर का नाम सुना होगा। मैं वहां के महाराज चन्द्रदीपसिंह का पुत्र राजेन्द्रसिंह हूं।

यह बात सुनते ही दुर्जय चौंक पड़ा और बोला—हैं! क्या आप ही राजकुमार राजेन्द्रसिंह हैं? आह? आप ही को छुड़ाने के लिए तो मैं रूपनगर गया था, जबकि मेरे ऊपर इतनी विपत्ति आई। मुझे स्वप्न में भी विश्वास न था कि आप हमें इस प्रकार जीवित अवस्था में मिल जाएंगे परन्तु आपका उद्धार करने का पूरा श्रेय भैया विजय को है, जिन्होंने आपको उस विशाल खम्भे के नीचे से निकाला था!

राजकुमार राजेन्द्र बोले—दुर्जयसिंह! मैं तुम्हें और तुम्हारे भाई विजय को कोटिशः धन्यवाद देता हूं। तुम्हीं लोगों के अथक परिश्रम से मुक्ति मिली।

दुर्जय—भैया विजय! आज मुझे अपने भाग्य पर बड़ा गर्व हो रहा है। आज संसार में मुझसा सुखी कोई नहीं है। मैंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि इस संसार में मेरा और भी कोई है। मैं प्रारम्भ से यही सोचता आ रहा था कि मैं अभागा तथा मात-पितृहीन हूं परन्तु आज मेरा यह सोचना सर्वथा निर्मूल सिद्ध हुआ और मैं अपने भाई और माता को साक्षात अपने पास बैठे हुए देख रहा हूं। मैं तुम्हारा सहोदर भाई हूं। भैया! जब मैंने तुम्हारे इस गुप्तस्थान पर चढ़ाई की थी तभी तुमने यह जान लिया था कि मैं तुम्हारा भाई हूं तो फिर तुमने उसी समय मुझे अपना परिचय क्यों न दे दिया?

विजय—दुर्जय! उस समय मैंने यही सोचकर तुम्हें अपना परिचय नहीं दिया था कि मुझे खंगबहादुर से बदला लेने में अड़चन पड़ेगी। क्योंकि तुम उनके सहायक थे परन्तु जब तुम्हारे ऊपर रूपनगर में विपत्ति आई, उस समय मैंने यही सोचा कि अब अपने भेद को अधिक दिनों तक छिपाना ठीक नहीं। यही कारण है कि मैंने खंगबहादुर से बदला लेने के पहले ही, तुम्हें अपना परिचय दे दिया। अब तक मैंने यही सोचा था कि खंगबहादुर को इस प्रकार कष्ट दूंगा कि उन्हें मृत्यु से भी कठोर यन्त्रणा भुगतानी पड़े, परन्तु अब तुम्हारे कारण मैं उनसे बदला लेने में हिचक रहा हूं खैर! जैसा होगा देखा जाएगा। कुमारी कनकलता अभी तक मेरे ही यहां हैं। मैं उसे रजनीकान्त के साथ चुनार भेज देता हूं और महाराज खंगबहादुर से कहला देता हूं कि राजकुमार दुर्जयसिंह के पास अपनी कन्या का परिग्रहण स्वीकार कर लें।

कर लें। यदि वे इस बात को स्वीकार कर लेंगे तो मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा विवाह राजकुमारी कनकलता के साथ कर दूंगा। परन्तु एक बात की अड़चन पड़ रही है कि महाराज खंगबहादुर विवाहोत्सव में मुझे देख लेंगे, तो तुरन्त ही पहचान जाएंगे इसलिए अच्छा तो यही है कि मैं उनके सामने न पड़ूं।

० ० ०

राजकुमार राजेन्द्रसिंह गुरुघंटाल के यहां से जिस समय अपने राज्य में पहुंचे उस समय महाराज चन्द्रदीपसिंह के हर्ष का पारावार न रहा। उसी प्रकार जब राजकुमारी कनकलता रजनीकान्त के साथ चुनार राज्य में पहुंची तो महाराज खंगबहादुर अपनी पुत्री को जीवित पाकर बहुत प्रसन्न हुए। राज्य भर में चारों ओर उल्लास छा गया।

उधर विजयसिंह अपनी मां तथा दुर्जय, रज्जन, रघुवंश प्यारेलाल आदि के साथ अपने राज्य प्रेमनगर में आया। राज्य के अधिकारी, वृद्ध मंत्री आदि दोनों राजकुमारों तथा महारानी कलावती को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तुरन्त राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया गया और शुभ दिन में विजयसिंह प्रेमनगर की राजगद्दी पर बैठ गए।

राज्याभिषेक के चार दिन बाद विजयसिंह ने मन्त्री से रसिकरसाल को अपने सामने उपस्थित करने की आज्ञा दी। मन्त्री ने तुरंत ही अपने अनुचरों को रसिकरसाल को कैदखाने से लाने को भेजा, परन्तु अनुचर तुरन्त ही वापस लौट आए और बोले—सरकार! रसिकरसाल तो आज रात को न जाने कैसे कैदखाने से भाग गया। यह बात सुनते ही विजय को दुःख हुआ कि उसका शत्रु उसके पंजे में से आकर भी निकल गया।

विजयसिंह की ओर से एक दूत महाराज खंगबहादुर के पास भेजा गया और उनसे कनकलता तथा दुर्जय के विवाह की स्वीकृति मांगी गई। विजयसिंह ने दूत से यह कह दिया था कि वह महाराज खंगबहादुर को उसका नाम न बताए। जब दूत चुनार पहुंचा, उस समय महाराज खंगबहादुर कनकलता के मिल जाने पर, हर्षोत्सव में तल्लीन थे। दूत से यह सुना कि 'खून का प्यासा' वस्तुतः प्रेमनगर महाराज का भाई है। तो उनका हर्ष चरम सीमा तक पहुंच गया। उन्होंने विवाह की स्वीकृति दे दी।

शुभ मुहूर्त में राजकुमारी कनकलता का पाणिग्रहण राजकुमार दुर्जयसिंह के साथ हो गया। परन्तु विवाहोत्सव के दिन विजयसिंह खंगबहादुर के सामने नहीं गया, यही कारण था कि महाराज खंगबहादुर

अन्त तक न जान पाए कि प्रेमनगर का अधिपति वही विजयसिंह है, जिसे उन्होंने एक दिन निर्दयतापूर्वक मसल देना चाहा था।

३४

विजयसिंह बड़ी ही योग्यतापूर्वक प्रेमनगर का शासन कर रहा था। उसकी शासन व्यवस्था बड़ी उत्तम थी। प्रजागण पूर्णतया सन्तुष्ट थी। विजय भी उसकी सन्तुष्टि के लिए पूरा ध्यान रखता था। यही कारण था कि प्रजा उसे जी-जान से मानने लगी थी। राज्य में चारों ओर शान्ति थी।

यों तो विजयसिंह के दिन बहुत ही खुशी से व्यतीत हो रहे थे। फिर भी विजयसिंह की मानसिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वह दिन-रात चिन्ता-सागर में गोते लगाया करता था। प्रारम्भ से ही विजय न्यायप्रिय था। वह अन्याय होते नहीं देख सकता था। वह रसिकरसाल द्वारा अपने पिता की नृशंसतापूर्वक हत्या किया जाना, स्वयं अपनी आंखों से देख चुका था और उसने रसिकरसाल को नष्ट कर देने का प्रण कर लिया था, परन्तु वह अपना प्रण पालन नहीं कर सका, क्योंकि उसका शत्रु रसिकरसाल उसकी कैद में आकर भी भाग गया।

विजय की चिन्ता का एक और कारण था—वह था महाराज खंगबहादुर से अपने अपमान तथा महारानी हेमा की मृत्यु का प्रतिशोध न ले सकना। वह अब ऐसा कर सकने में पूर्णतया असमर्थ था, क्योंकि अब महाराज खंगबहादुर उसके भाई के श्वसुर हो चुके थे।

इन्हीं सब कारणों से विजय की मानसिक दशा अच्छी नहीं थी। उसका व्रत अब पूर्णतया भंग हो चुका था। वह न्याय का पुजारी था और न्याय के लिए ही वह अपने शत्रुओं से बदला लेना चाहता था, परन्तु घटनाचक्र ने इस प्रकार अपना जाल फैला दिया था कि अब बदला लेने का कोई भी मार्ग नहीं था।

• • •

एक सुसज्जित कमरे में एक ऊंचे पलंग पर विजय सोया हुआ है। वह इस समय प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न है। कमरे में एक उज्ज्वल मोमी शमादान जल रहा है। परन्तु सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इस समय इसी कमरे में एक और व्यक्ति उपस्थित है। वह व्यक्ति मनुष्य की तरह नहीं है, वरन् एक छाया की तरह मालूम पड़ रहा है! देखिए? दक्खिन के कोने में ऊंची-सी भयानक छाया खड़ी है। मनुष्य का

आकार नहीं दीख पड़ रहा है, केवल छाया ही दृष्टिगोचर हो रही है। वह छाया बड़ी ही भयंकर है, परन्तु विजयसिंह को इन सब बातों की जरा भी खबर नहीं है।

धीरे-धीरे उस भयंकर छाया का लम्बा हाथ आगे बढ़ा और उसने शमादान की रोशनी गुल कर दी। कमरे में अन्धकार छा गया। उसी समय विजय के माथे पर किसी कड़े हाथ का स्पर्श हुआ जिससे उसकी निद्रा भंग हो गई और वह उठ बैठा तथा कमरे में घोर अन्धकार देखकर आश्चर्य करने लगा। इतने में ही उसके कानों में एक घरघराती हुई आवाज सुनाई पड़ी—नादान ! तू यहां पड़ा हुआ सुख की नींद सो रहा है और मैं प्यास के मारे मरा जा रहा हूं। क्या तू नहीं जानता कि मैं प्यासा हूं---मनुष्य के 'खून का प्यासा'। क्या तू अपने प्रण को भूल गया ? तूने कहा था न कि 'पवित्र आत्मा मैं तुम्हें अपने शत्रुओं के रक्त का पान कराऊंगा। यदि मैं ऐसा न कर सका तो किसी प्रकार के भोग में लिप्त न हूंगा।'' तो फिर बता कि तेरा वह प्रण अब असत्य क्यों हो रहा है। मैं अभी तक प्यासा ही रहा और तू यहां पड़ा हुआ राज्य-सुख का उपभोग कर रहा है।

इस आवाज को सुनते ही विजय समझ गया कि उसकी साधित 'प्रेत आत्मा' उसके कमरे में उपस्थित है। वह नम्रतापूर्वक बोला, पवित्र आत्मा ! मैं अभी तक अपना प्रण भूला नहीं हूं। मैं अवश्य ही तुम्हें अपने शत्रुओं के रक्त का पान कराऊंगा। तुम धैर्य रक्खो। यदि तुम मेरी मानसिक अवस्था के विषय में जानते होते, तो कभी मुझ पर क्रोध न करते। इस समय मैं बड़ी ही विकट परिस्थिति में पड़ गया हूं। मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा कि क्या करूं ? अपने जीवन का पवित्र अनुष्ठान भंग हो जाने के कारण स्वयं ही मृतप्रात हो रहा हूं। मैंने तुम्हें अपने शत्रुओं का रक्त पिलाने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अभी तक तुम्हारी पिपासा शान्त न कर सका। यदि मैं अपने प्रयत्नों में असफल रहूंगा, तो तुम्हारी पिपासा अपने ही रक्त से शान्त करूंगा।

पुनः वह घरघराती हुई आवाज आई—अच्छा ! मैं जा रहा हूं देखना अपना प्रण न भूलना।

० ० ०

विजय बोला—मां ! मैंने इस आधी रात के समय तुम लोगों को एक विशेष कार्य से बुलाया है। आज तक मैंने अपने हृदय की व्यथा छिपाने का सतत प्रयत्न किया परन्तु फिर भी मेरी वह मानसिक अशान्ति दूर न हुई। आज मैं तुम सबसे अपने हृदय की बात कह दूंगा।

इस जीवन में मैंने किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं की थी सिवाय इसके कि मेरे प्रबल शत्रुगण मेरे कब्जे में आ जाएं, ताकि मैं उन्हें दण्ड दे सकूं। परन्तु मेरा वह व्रत अभी तक पूरा न हुआ। रसिकरसाल मेरे हाथों में आकर के भी निकल गया और महाराज जंगबहादुर से अब प्रतिशोध लेना सर्वथा असम्भव है। अब मैं इस सारे ससार को त्याग कर किसी भयानक जंगल की शरण लूंगा। मैं आज अपना सारा राज्य दुर्जय को प्रदान करता हूं। आज से प्रेमनगर पर वही राज्य करेगा। मैं राज-पाट के इन सारे सुखों को त्याग करके घनघोर जंगल में एक ऐसे स्थान की खोज करूंगा, जहां न तो दुःख होगा और न सन्ताप। यही हमारी इच्छा है।

दुर्जय बोला—भैया! यह तुम क्या कह रहे हो! तुम्हारे चले जाने पर हमारी क्या दशा होगी!

विजय—दुर्जय! तुम शोक न करो। विधाता की यही इच्छा है कि मैं जीवन-भर दुःख उठाता रहूं।

दुर्जय—भैया! यदि तुम्हारे सन्ताप का कारण मैं ही हूं तो मुझे आज्ञा दो! मैं आपकी आज्ञा से सहर्ष अपने प्राणों का विसर्जन कर सकता हूं।

विजय—नहीं दुर्जय! मेरे सन्ताप का कारण बहुत बड़ा है। और तुम उसे कदापि दूर नहीं कर सकते। अब मेरे लिए केवल यही मार्ग है कि मैं तुम सबको छोड़ कर ऐसी जगह चला जाऊं जहां मैं इस चिन्ता से छुटकारा पा सकूं।

दुर्जय! आगे बढ़ो।

दुर्जय काठ के पुतले की भांति विजय के पास आकर खड़ा हो गया। विजय ने कमर से छुरी निकाल कर अपनी कनिष्ठ अंगुली चीर दी तथा उसी रक्त से दुर्जय के माथे पर तिलक करके बोला—दुर्जय! अब से तुम प्रेमनगर के अधीश्वर हुए। जिस प्रकार मैं प्रजा की सेवा करता हूं, उसी प्रकार तुम भी करना।

सभी की आंखें अश्रुपूर्ण थीं। दुर्जय की आंखों से दो बूंद आंसू टपककर विजय के चरणों पर गिर पड़े। बिजली जोरों से कड़क उठी। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

विजय उठ खड़ा हुआ और आलमारी में से 'गुरुघंटाल' की पोशाक निकालकर रख ली। तत्पश्चात् दरवाजे की ओर बढ़ा। अपने बेटे को सर्वदा के लिए चले जाते हुए देखकर विजय की मां फूट-फूट कर रोने लगी। वह दौड़कर विजय से लिपट गई और बोली—मेरे लाल!

मत जा मुझे छोड़कर। जिसको सदा अपने हृदय से लगाए रखती थी, उसका बिछोह मैं कैसे सहूंगी ?

परन्तु विजय ने उसे निष्ठुरतापूर्वक अपने से अलग कर दिया और बोला—मां ! मुझे मत रोको। मैं न्याय के पथ पर अग्रसर हो रहा हूं। हट जाओ।

इतना कहते-कहते विजय की भी आंखें छलछला आईं। परन्तु उसने अपने हृदय के आवेग को रोका और शीघ्रतापूर्वक कमरे से बाहर निकल गया। उसके जाते ही दुर्जय आदि पछाड़ खाकर गिर पड़े। दुर्जय बिल्ला रहा था—भैया—! भैया !! लौट आओ। मत जाओ मुझे छोड़कर।

उसकी मां छाती पीटती हुई पुकार रही थी—मेरे लाल ! मेरी आंखों के तारे ! चला आ। मत जा कहीं।

सभी शोकमग्न थे। सभी जोर-जोर से रो रहे थे परन्तु विजय ने किसी के रोने पर ध्यान न दिया। वह अपने रास्ते पर चला ही गया।

बिचारा विजय चला गया। वही विजय जिसने सीना खोलकर विपत्तियों का सामना किया था, जिसने लाखों बाधाओं को उपस्थित देखकर हार न मानी थी, तथा अपने शत्रुओं का मटियामेट कर देने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी—वह विजय आज अपने भाई, मां, मन्त्री आदि सबको बिलखते हुए छोड़कर आखिर चला ही गया।

उसकी मां रो-रो कर अपने दिन काटने लगी। हाय ! उसका लाल जिसका मुंह देखकर वह अब तक अपने सारे दुःखों को भूल-सी गई थी तथा जिसकी सान्त्वनामयी वाणी सुनकर वह अब तक अपने जीवन के दुखमय दिवस किसी प्रकार व्यतीत करती आ रही थी—हाय ! आज उसका वही लाल विजय उसे छोड़कर न जाने कहां चला गया। बस।

□ □ □



कुशवाहा 'कान्त'

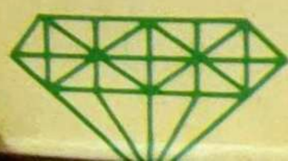
का मनभावन उपन्यास

खून का प्यासा

कुशवाहाकान्त हिन्दी उपन्यास जगत पर पिछले 40 वर्षों से छाये हुए है। उनकी सरल सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल मचा दी थी। उनके उपन्यासों में जहां श्रृंगार रस का अनूठा समन्वय है, वहीं क्रान्तिकारी लेखनी व जासूसी कृतियों में भी उनका कोई सानी नहीं है। उन्होनें कुल 35 उपन्यास लिखे है। वह आज भी उतने ही लोकप्रिय है जितने 40 वर्ष पूर्व थे। उनका प्रत्येक उपन्यास पढ़कर पाठक उनके पूरे उपन्यास पढ़ना चाहता है।

उसी उपन्यासकार की एक उत्कृष्ट रचना आपके हाथों में है।

डायमंड पाकेट बुक्स कुशवाहाकान्त के उपन्यासों को आप तक पहुंचा कर गर्व अनुभव कर रहा है।


डायमंड पाकेट बुक्स